एक ओर प्रसन्नता और दूसरी ओर चीख-पुकारों की कराह, विचित्र सम्मिश्रण था, परन्तु दुनिया के घर-घर में यह सम्मिश्रण सृष्टि के आदि काल से होता चला आया है। एक परेशानी, एक आशा, एक उमंग, भाग-दौड़, काना-फूसी,—यह सभी-कुछ तो चल रहा था, अपने स्वाभाविक प्रवाह के साथ आज दातादीन के घर में। रमधनिया की सास भी लबड़-भबड़ इधर-उधर भाग रही थी। रमधनिया का ससुर बाहर चबूतरे पर किसी शुभ समाचार के पाने की इच्छा से कान पसारे बैठा था। वह हुक्का पी रहा था अपने चन्द साथियों के साथ, परन्तु मन और मस्तिष्क घर से बँधे थे। कुछ सुनना चाहते थे कान।

× × × ×

रमधनिया का ससुर दातादीन मेहनती किसान था। पचास वर्ष तक अपनी हड्डियाँ पेल-पेलकर किसी तरह हज़ार-बारह सौ रुपया जमा किया और अपनी गृहस्थी की दशा को सुधारा। अब उसके सामने अपने परिवार की वंश-बेल को आगे बढ़ाने का प्रश्न था। रौब-दौब से काम नहीं चला, बिरादरी की ब्याह-बरातों में, छोटी-मोटी सभाओं और पंचायतों में बन-ठनकर जाने का नाटक भी असफल सिद्ध हुआ,—चन्दू का रिश्ता लेकर कोई न आया—तो दातादीन को लगा कि बस उसकी वंश-बेल सूखी और उसका चन्दू कुंआरा ही रह गया। यह विचार मन में आता तो दातादीन का कई पलों खून सूख जाता, दिल बैठने लगता और दुनिया सूनी-सूनी जँचने लगती। उसे लगता कि मानो वह दुनिया में व्यर्थ आया, अपना कर्त्तव्य भी पूरा नहीं कर सका। कभी-कभी जब वह गर्व के साथ अपने जीवन के कारनामों पर दृष्टि

डालता था तो उमङ्गों में फूल उठता था । उसकी छाती चार इन्च चौड़ी हो जाती थी । उसने अपनी मेहनत से मकान बनाया था, बैठक बनाई थी । यह काम उसके पूर्वज नहीं कर सके थे। आज उसकी हिम्मत पस्त थी, उसका साहस नष्ट हो चुका था और उसे अपनापन अपने उन पूर्वजों के सामने बहुत हीन जँच रहा था जो कम-से-कम दातादीन का विवाह तो कर सके।

दातादीन चन्दू का विवाह न कर सका।

परन्तु दातादीन चन्दू का विवाह अवश्य करेगा, —यह उसका दृढ़ संकल्प था। जमीन पर कर्ज़ करना पड़े, अपने जीवन की कमाई हुई सारी सम्पत्ति चाहे इस कार्य पर न्योछावर कर देनी हो, उसे कोई चिन्ता नहीं।

दातादीन ने अपनी मनचाही करके ही दम लिया। जो टके पास में थे उनमें साहूकार से कुछ रुपया ज़मीन, घर, बैलगाड़ी, भैंस इत्यादि पर कर्ज़ लेकर मिला लिया और निकल पड़ा चन्दू के लिए बहू खोजने। बहू उसे मिल गई,—बहुत जल्द, सौदा निश्चित हो गया। दो हज़ार पांच-सौ रुपया खर्च हुआ।

चार बिरादरी के आदमियों, भाई-बन्धुओं मे बातें हुईं। कुछ ने सौदा महँगा और कुछ ने सस्ता बताया। कुछ ने इस प्रकार विवाह करने की आलोचना की, कुछ ने 'चलो घर बस गया' कहकर प्रसन्नता प्रदर्शित की और इसी तरह हज़ार मुँह से हज़ार बातें निकलीं। दातादीन पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसे अपने चन्दू का विवाह करना था और वह उसने किया,—खूब धूम-धाम के साथ किया,—खूब गाजे-बाजे के साथ किया,—खूब भाई-बिरादरी की ज्योनार के साथ किया। सब गाईं घर पर आये,—किसी की नाक अन्त समय तक चढ़ी रही, किसी ने हँस-दौड़कर प्रसन्नता के साथ भाग लिया। दातादीन ने बिरादरी के भाई-बन्धुओं को प्रसन्न रखने का भरसक प्रयत्न किया। बेटे के विवाह की प्रसन्नता पर अपने आत्म-सम्मान को भी

उठाकर दूर रख दिया। सबकी सुनी और सबकी सही।

× × × ×

आज उसी विवाह का फल दातादीन के परिवार को भगवान् प्रदान करने वाले थे और दातादीन हृदय में उमङ्ग लिए मन-ही-मन भगवान् की ओर टकटकी लगाये बैठा था। पोते के दर्शन करने की उत्कट इच्छा हृदय से उमड़ी पड़ रही थी। बार-बार खाट से उठकर खड़ा हो जाता था दातादीन। अब न रहा गया, तो वह अपनी चादर कन्धे पर डाल, बिना किसी से कुछ बोले, घर की ओर हो लिया।

घर पहुँचा तो बाहर दुवारी में ही रुक गया। कच्ची दुवारी, दालान और कच्चा कोठा, बस यही था दातादीन का कुल मकान। इशारे से चन्दू की माँ को बुलाकर धीरे से पूछा,—"सब ठीक है ना।"

"क्यों, ठीक को क्या हो गया है? कोई नई बात है क्या? बिनतरवाली मचाई हुई है।" सास ने मुसकराकर दातादीन के सामने हलकी-सी हँसी होठों पर लाकर कहा। तुम बेकार क्यों आ जाते हो औरतों के कामों में अपनी टाँग फँसाने के लिए।"

दातादीन अपनी स्त्री से यह मीठी फटकार सुनकर, उलटे ही पैरों लौटकर चौपाल पर पहुँच गया परन्तु उसका मन पोते में ही अटका हुआ था। वह उसकी प्रतीक्षा कर रहा था आनन्द-भरी आकांक्षाओं तथा स्वप्नों को लेकर।

रमपतिया की सास भाग-दौड़ तो कर रही थी परन्तु उसका ध्यान रमपतिया की परेशानी की ओर तनिक भी नहीं था। वह उसकी दृष्टि में कोई परेशानी ही नहीं थी। कोई बीमारी तो थी नहीं वह, जिसका वह उपचार करने की सोचती। प्रकृति के साधारण नियमों में वह क्यों हस्तक्षेप करे। चार घड़ी का चोचला-विश्वास था,—जो कोई विशेष बात नहीं थी। वह भी प्रतीक्षा कर रही थी अपने पोते को एक नजर देखने की, गोद में खिलाने की और अपने चन्दू की वंश-बेल को अपनी आँखों के सामने नई पीढ़ी में पल्लवित करते हुए देखने की।

रमघनिया परेशान थी। कोई पास बैठने वाला भी ढङ्ग से नहीं था। यह उसने सुना अवश्य था कि प्रसव-वेदना बड़ी भयंकर होती है, परन्तु आज उसका विकराल रूप उसके सम्मुख था, मानो एक बालक को जन्म देने में उसके अपने प्राण शरीर से निकले जा रहे थे। तमाम शरीर काँप रहा था, रोम-रोम तनकर सतर हो गया था। बदन से पसीना छूट रहा था। अजीब परेशानी थी। सास के भय से शारीरिक पीड़ा से वह अन्दर-ही-अन्दर घोंट लेने का प्रयास कर रही थी। परन्तु कहाँ? पीड़ा इतनी प्रबल थी कि बार-बार मुख से अनायास ही चीख निकल जाती थी। महान् कष्ट परन्तु पुत्र की आशा ही रमघनियाँ को भी इस महान् कष्ट में एक आलम्बन थी, एक सहारा थी, एक आश्वासन थी, कल्पना थी······ ···स्वर्ग की कल्पना, सुख की कल्पना, बेटे की कल्पना, जीवन की कल्पना!

बेटा······ पोता · ···बेटा······पोता··· · बस यही मनोकामना घर के वातावरण में आच्छादित थी। 'अपने मन कुछ और है, विधिना के मन और' वाली कहावत का ध्यान नहीं था। गाँव की बूढ़ी दाई आई और उसने रमघनिया को शब्दों का आश्वासन दिया, बल दिया। उसे सहारा-सा मिला। बूढ़ी दाई के प्यार-भरे शब्दों ने मानो रमघनियाँ के पके हुए चीरते फोड़े पर मरहम लगा दिया, उसकी वेदना को कम कर दिया।

सन्ध्या को लगभग तीन बजे बच्चे का जन्म हुआ। आनन्द और हर्ष ऐसे समाप्त हो गये मानो उनका उस घर के वातावरण में कभी बसेरा ही नहीं हुआ था। दूध के उफान पर पानी का छींटा लग गया। रमघनिया की दशा ऐसी थी मानो विधाता ने उसे नौ महीने आस दिखाकर उसका कुछ अच्छा फल देने के स्थान पर उलटा दण्डित ही उसे किया हो, अपमानित ही उसे किया हो। उसे किसी दीन का न छोड़ा विधाता ने,—उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया। उसका मान, [illegible] उसकी उमङ्ग, उसकी आशाएँ, उसके स्वप्न—सब

विलीन हो गये एक दुराशा की काली छाया में।

रमधनिया के गर्भ से पुत्र की उत्पत्ति न होकर कन्या महारानी ने जन्म लिया।

दातादीन और चन्दू की माँ के मस्तकों पर सलवटें पड़ गईं और ऋण सिर पर आकर लद गया। जीवन-भर की कमाई और बाप-दादों की सम्पत्ति गिरवी-रखकर जो विवाह किया उसका यह फल निकला।

दोनों ने मिलकर अपने भाग्य को कोसा और फिर तनिक सतर्क होकर यह निश्चय किया कि इस लड़की को यहीं पर समाप्त कर देना उचित होगा। उनकी आर्थिक दशा पहले ही काफी खराब हो चुकी थी, यदि उस पर यह भार और उनके सिर आ गया तो उन्हें दो-दो दाने के लिए मुहताज हो जाना पड़ेगा। फिर यदि उसका विवाह बिरादरी में नाक रखकर न कर पाये तो हमेशा के लिए घर की आबरू मिट्टी में मिल जायगी।

जब दाई अपना काम समाप्त करके जा चुकी तो रमधनिया की सास कोठे में गई और बहू से उस नन्हीं बच्ची को अपने हाथों में लेकर उसकी जीभ से कुछ लगा दिया। फिर चुपके से बाहर निकल आई। दातादीन कोठे के बाहर खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था। बाहर आने पर धीरे से पूछा—"चटा दिया ?"

"हाँ !" स्त्री ने दबे स्वर में कहा। उसका बदन काँप रहा था।

"काँप क्यों रही हो चन्दू की माँ ?" दातादीन ने अपने मन की घबराहट को दबाकर पूछा।

"काँप तो नहीं रही······" कहती-कहती वह चुप होगई। परन्तु दातादीन ने अनुभव किया कि चन्दू की माँ की आत्मा को अवश्य इस कार्य से गहरी ठेस लगी है।

दातादीन ने अपना दिल और मजबूत किया। अपनी लाठी हाथ

एक बाँदी थी, जिसे उसका पति उसके लिए खरीदकर लाया था,—पर उस बच्ची का मुँह बार-बार उसकी नेत्रों की पुतलियों में उतर आता था जिसकी जीभ पर आखे का दूध लगाकर उससे इस संसार में रहने का अधिकार वह छीनने का प्रयास कर चुकी थी। उसके दिल में एक जलन-सी पैदा होने लगी। दातादीन पर कुछ क्रोध भी आया, परन्तु फिर तुरन्त ही दातादीन की लाचारी उसकी आँखों की पुतलियों में झूल उठी।

चन्दू कुछ करता नहीं, कमाता नहीं। दिन-भर दोस्तों में बैठकर गप्पें लगाता है। खेलता और गुलछर्रे उड़ाता है और पिलना पड़ता है अकेले दातादीन को। आखिर दातादीन की भी तो हड्डियाँ फौलाद की बनी हुई नहीं हैं। कहाँ तक काम देंगी? पहले ही इस गृहस्थी पर कौन कम खर्चा था जो इस नई देवी का भी भार हँसकर ग्रहण कर लिया जाता।

रमधनिया की सास को रह-रहकर रमधनिया पर ही क्रोध आ रहा था। उसे लगा कि मानो इस घर के सर्वनाश की बस वही एक कारण थी। अपना सब कुछ गिरवी रखकर उसे लाये और उसने जन्म दिया कन्या महारानी को। उसे लगा कि मानो वे लुट गये। हीरे के धोखे में उनके हाथ पत्थर ही लगा। अब यदि उसने इसी प्रकार और दो-चार कन्याओं को जन्म दिया तो पोते का मुख देखना तो दूर की बात रही, उलटा बार-बार कन्याओं को मारने का पाप और सिर पर लेना होगा। दुराशा से उसका शरीर काँप उठा।

कुछ देर पश्चात् वह रमधनिया के कोठे में गई और बच्ची को टटोलकर देखा। उसकी नासिका पर श्वास-प्रवाह के सम्मुख उँगली रखकर देखा, बच्ची जीवित थी,—मरी नहीं थी। बाहर निकली तो दातादीन दुवारी में खड़ा था। उसने अन्दर आकर धीरे से पूछा, "क्या हुआ?"

"अभी कुछ नहीं। साँस चल रहा है, मरी नहीं।"

"तब जरूर कुछ दाल में काला है। मेरे कोठे से बाहर निकलने के बाद बहू ने उसका हलक साफ कर दिया होगा। तू जाकर दुबारा देख आ चन्दू की माँ!" झल्लाकर दातादीन बोला, "इस घर में सब मेरे ही खून के प्यासे हैं। दातादीन का खून सबको मीठा लगता है।"

रमधनिया की सास इस बार कुछ नहीं बोली। उसकी आँखों के सामने बच्ची की सुन्दर आकृति नाच रही थी। कितनी मनोरम थी वह! वह बोली चन्दू के बाद इसी बच्चे ने तो घर में जन्म लिया है और इसीके साथ यह व्यवहार। भगवान् भी क्या कहेगा? सब अपने-अपने भाग का खाते हैं। जरा-सी बच्ची क्या सिर पर चढ़ती है?"

"जरूर तेरी ही कुछ साजिश थी इसमें जो नहीं मरी।" कड़ककर दातादीन ने कहा।

"हाँ, मेरी ही साजिश थी। मैं अभी बच्ची को तेरे हाथों में ला देती हूँ। गला घोंट दे उसका। बात ही कितनी है। तेरे कहने से मैंने एक बार पाप कर लिया, अब नहीं करूँगी।" दृढ़तापूर्वक चन्दू की माँ ने कहा।

"नहीं करेगी?" कड़ककर लाठी का ठोक जमीन पर मारते हुए दातादीन ने कहा, "नहीं करेगी तो ला, मैं ही उसे खतम करता हूँ।"

रमधनिया की सास ने कोठे में जाकर बच्ची को रमधनिया के पास से उठा लिया। रमधनिया एक शब्द भी न बोल सकी। वह बेज़बान जानवर की तरह लाचार थी, परवश थी। अपनी बच्ची के प्राण बचाने का उसे अधिकार नहीं था।

चन्दू की माँ ने बच्ची को दातादीन के हाथों में दे दिया।

दातादीन की दृष्टि उस विधाता के खिलौने पर गई तो उसे चन्दू का बाल-रूप स्मरण हो आया। हृदय में प्रेम-भावना कुलमुलाने लगी। वह उसी प्रकार बच्ची को हाथों में लिए खड़ा रहा और उसने बच्ची को ऊपर उठाकर अपनी लम्बी-लम्बी मूँछें उसके मुख पर फिराते हुए धीरे से चूम लिया। वह बोला एक शब्द

नहीं। बच्ची को ज्यों-का-त्यों अपनी स्त्री के हाथों में देकर सिर नीचा किये, घर से निकल गया।

पास-पड़ोस की औरतों का आना आरम्भ हुआ। सबने अपने-अपने मन की बात कही। किसी ने खुले और किसी ने दबे शब्दों में इस गृहस्थी के दुर्भाग्य पर हलके-हलके छींटे कसे और किसी ने 'भगवान् की देन' कहकर कन्या को वरदान भी दिया, परन्तु आज के वातावरण में प्रसन्नता की अपेक्षा सहानुभूति का ही साम्राज्य था।

रमघनिया की सास ने सभी पास-पड़ोसिनों से बातों के दौरान में इतना ही कहा—"बहन ! भगवान् ने जो दिया है हमने उसे प्रसन्नता-पूर्वक ग्रहण कर लिया। पोता और पोती सभी बराबर हैं।"

सभी गाँव की स्त्रियों ने रमघनिया की सास के साहस की सराहना की। अभी-अभी चन्द मिनट पूर्व इस घर में जो काण्ड हुआ उसकी कानों-कान भी सूचना किसी को न मिल सकी।

रमघनिया की बच्ची उसे वापस मिल गई। उसने उसे प्यार के साथ छाती से चिपका लिया और अचानक ही उसके नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह निकली। अकेले में न जाने कितनी देर तक वह फूट-फूटकर रोती रही। उसका हृदय बार-बार भर आता था और हृदय के उद्गार नेत्रों के द्वार से आँसू बनकर निकल जाते थे। एक ज्वाला जल रही थी उसके हृदय में। परन्तु इस महान् पीड़ा और परेशानी में भी जब वह उस कोमल अनजान बच्ची पर दृष्टि डालती थी तो मानो उसकी सम्पूर्ण पीड़ा एक क्षण में काफूर हो जाती थी। उसे लगता था मानो उसने अपना सर्वस्व देकर कुछ प्राप्त किया था, अपना उत्तर-दायित्व निभाया था। उसने जन्म दिया था एक बच्ची को और अब उसका अपना जीवन उस बच्ची के निमित्त था। बच्ची को प्यार से उठाकर अपने होठों से लगाकर चूमा। उसने इस व्याकुलता के वातावरण में भी एक स्वर्णिम कल्पना का साम्राज्य रच लिया। अपनी एक सुनहली दुनिया बसा ली।

वह फूल-सी सुकुमार बच्ची, कलिका जो अभी ऊपर की पंखड़ियों से भी मुक्त न हो पाई थी,—रमघनिया के पास लेटी थी। वह विकसित होगी, खिलेगी, खेलती-कूदती फिरेगी, दुःख-सुख में अपनी माँ का हाथ बँटाएगी,…… ……और न जाने कितनी कल्पनाएँ रमघनिया के मस्तिष्क में आती चली जा रही थीं। अब वह भूल गई प्रसव-वेदना को।

: २ :

रमघनिया को उसकी बच्ची,—उसके हृदय का टुकड़ा तो मिल गया, परन्तु वह मान, वह यश, वह गौरव प्राप्त न हो सका जो बेटे की माता को प्राप्त होता है। उसका व्यक्तित्व यहीं से दब गया, झुक गया। उसमें कमजोरी आ गई। उसमें से उभरकर चलने की प्रवृत्ति नष्ट हो गई।

परन्तु साथ ही एक जिम्मेदारी की भावना ने आज प्रथम बार उसके जीवन में झाँका। उसे दिखाई दिया कि उसे कुछ करना होगा।

रमघनिया की बच्ची को सास-ससुर ने क्षमा कर दिया, मानो यही उस पर एक बड़ा उपकार था। बच्ची के लिए उनके हृदय में दया का अंकुर भी कुछ-कुछ उग आया, परन्तु रमघनिया के प्रति उनके क्रोध की मात्रा कम नहीं हुई।

दातादीन जो पहले काठ से भी अधिक कठोर था, अब नर्म हो गया था। रमघनिया की विवशता पर उसे सहानुभूति भी थी। परन्तु उसकी सास का पारा हर समय चढ़ा ही रहता था। उसे गर्व था अपने जीवन पर। उसने पहली ही बार में चन्दू को जन्म दिया था, पुत्र पैदा किया। कन्या को जन्म देने वाली साधारण खरीदकर लाई हुई स्त्री से उसका मुकाबला ही क्या था?

जापे में जो अच्छा खाने-पीने के लिए जच्चा को दिया जाता है वह भी रमघनिया को कुछ नहीं दिया गया।

जो थोड़ा-बहुत, सेर-दो-सेर, घी होता होने पर उसे खिलाने के लिए जोड़ा गया था वह अब उसे खिलाना सास ने स्वयं समझा। वह भी दातादीन और चन्दू को ही खिला दिया।

रमधनिया के स्वास्थ्य की दशा दिन-प्रतिदिन गिरती जा रही थी। कई दिन से कुछ न खाने के कारण वह बहुत दुर्बल हो गई थी। उठ-बैठ भी नहीं सकती थी। खाट से लग गई थी कमर।

रमधनिया के पड़ोस में रामू की बेटी मुनिया, जिसने अपनी सास के दुर्व्यवहार से तंग आकर अपनी ससुराल को ही तिलाञ्जलि दे दी थी, कई दिन से रमधनिया की यह दशा देख रही थी। चन्दू की माँ के स्वभाव को जानते हुए वह कभी उधर नहीं गई थी। आज वह अपने को न रोक सकी। जो दशा इस समय रमधनिया की थी, वही उसकी बन चुकी थी।

रमधनिया की सास मुनिया की खानदान के रिश्ते से ताई लगती थी। मुनिया रमधनिया के पास जाकर कुछ देर बैठी, उसके दुःख-दर्द की बातें कीं,—रमधनिया को मानो मुनिया के रूप में भगवान् मिल गया। डूबते को तिनके का सहारा मिला। निराश्रित एक आश्रय पा गया। उसे जरूरत थी सहारे की।

"यह कुढ़ना व्यर्थ है। तू प्राण भी दे देगी, तब भी ताई के कान पर जूँ रेंगने वाली नहीं।" मुनिया ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

रमधनिया चुप रही, एक बात भी उसने अपनी सास के विरुद्ध न कही। दिल में उसके प्रचण्ड ज्वाला जल रही थी परन्तु होठों पर उसके एक शब्द न आया। उसने अपने सूखे होठों पर मुसकराहट लाकर धीरे से कहा,—"बहनजी ! मेरे भाग्य का दोष है, दोष किसका कहूँ ! और किसके भरोसे पर कुढ़ूँ-रुठूँ। एक बेसहारा औरत हूँ, जिसके पास माँ-बाप, भाई-बहन, पति किसी का भी कोई सहारा नहीं, भरोसा नहीं। सास-ससुर कम-से-कम खाना-कपड़ा तो दे रहे हैं।"

मुनिया रमधनिया की बात सुनकर दंग रह गई। उसने उसकी

दयनीय दशा देखी। मुनिया को अभिमान था अपने पिता पर,—इसीलिए वह सास, ससुर और पति पर नखरा तोड़कर अपने पीहर चली आई थी। किसी की क्या मजाल थी जो उसे रोक सकता? सास तरसती थी आज बहू के दर्शन को। बुढ़ापे में अपने हाथ से रोटियाँ टेकनी पड़ती थीं। बैठकर आराम से खाया भी न गया बुढ़िया से। मुनिया के ससुर ने जी-जान से बेटे की दूसरी शादी करने का प्रयत्न किया, पर सफलता न मिली। यदि कहीं कुछ बात पकने वाली भी बनी तो मुनिया के बाप ने वहाँ आकर उसका काम खराब कर दिया। मुनिया का बाप रामू रौब-दौब का आदमी था और फिर उसकी बात भी युक्तिसंगत थी। उसकी बेटी को छोड़ने वाले लड़के की आखिर दूसरी शादी क्यों हो?

परन्तु रमधनिया कहाँ जाय? मुनिया के जैसा बाप इसे भगवान् ने नहीं दिया। उसके बाप ने तो रमधनिया पर पन्द्रह रुपया लेकर जुआ खेला था, शराबें पी थीं।

मुनिया का दिल भर आया। बहू की दशा उससे छिपी नहीं थी और इससे पहले ही प्रसव-काल में उसके साथ जो व्यवहार उसकी सास ने किया वह उसने अपनी आँखों से देखा था। मुनिया अपने कोठे के ऊपर बैठकर दातादीन के मकान में होने वाली सभी बातों को देख लेती थी। बहू की जिन्दगी के साथ खेल खेला जा रहा था दातादीन के घर में। लेकिन दातादीन को इसका ज्ञान नहीं था।

"भाभी! अधिक इस समय कुछ नहीं कहूँगी। तुझे बुखार आ रहा है। इसका इलाज तुझे करना चाहिए। ताई नहीं करेगी············ नहीं करेगी।" मुनिया ने कहा।

"इलाज ननदजी! सुना तो है मैंने कि बीमारी का इलाज भी होता है, पर मेरा आज तक कभी किसी बीमारी में किसी ने कोई इलाज नहीं कराया।" रमधनिया ने डबडबाये नेत्रों से मुनिया के मुख पर देखते हुए कहा।

मुनिया के बदन में सिहरन ग्रा गई। उसने एक बार करुण दृष्टि से रमधनिया की बीमार हड्डियों के ढाँचे पर दृष्टि डाली और फिर उसके नेत्र आकाश पर उठ गये। उसने नेत्र बन्द करके मन-ही-मन कहा,—"भगवान्! नारी की यह दुर्दशा क्यों? क्यों नारी ही नारी के प्राण लेने को उद्यत है? बेलें अपने फल और फूलों को स्वयं चूसने पर क्यों उतारू हो रही हैं?" कारण वह न समझ सकी।

मुनिया गाँव के मदरसे में चार दर्जे तक पढ़ी थी,—विद्वान थी। वह चुपके से एक भी शब्द बिना बोले घर से निकल गई और कुछ ही मिनट बाद उसने आकर दो गोलियाँ रमधनिया को देकर कहा,—"इन्हें मुँह में डालकर पानी पी लो। निगल जाओ इन्हें। बुखार टूट जायगा आज ही, कल नहीं चढ़ेगा।"

रमधनिया इस गाँव की औषधियों से थर-थर काँपती थी। उसकी बच्ची को भी एक औषधि उसकी सास ने चटाई थी,—परन्तु मुनिया पर वह अविश्वास न कर सकी। प्रसव-काल में ही रमधनिया को मलेरिया ने घेर लिया था और इस कदर रगड़ा कि शरीर से रक्त-मांस को निचोड़कर केवल पिंजर-मात्र छोड़ा।

मुनिया की गोलियों ने राम-बाण का काम किया रमधनिया के बुखार पर। बुखार टूट गया। दूसरे दिन बुखार न आने से रमधनिया को जीवन की कुछ आशा बँधी। उसने तनिक प्यार से अपनी बच्ची को छाती से लगाया। उसके नन्हें-नन्हें कोमल गालों को चूमा और दो उँगलियों से उसके कपोलों पर थपकी दी।

दोपहर को रमधनिया की सास जंगल में झाड़ी चुनने चली जाती थी। मुनिया का यही समय रमधनिया के पास जाने का होता था। मनिया ने अपने पास से ही छै-सात दिन दवा-गोली खिलाकर रमधनिया को स्वस्थ कर दिया। मुनिया का अहसान रमधनिया जीवन-भर नहीं भूल सकती। गाँव में यही एक स्त्री थी जिससे वह अपने दुख-दर्द की बातें विश्वास के साथ कर सकती थी।

रमधनिया पढ़ी-लिखी एक फूटा अक्षर भी न थी, परन्तु थी बहुत चतुर। आदमी की उसे परख थी। गाँव की स्त्रियों के सामने सास की निन्दा वह कभी नहीं करती थी। दबकर जीवन की नौका को आगे घसीटने को वह अपना स्वभाव बना चुकी थी।

मेहनत करने में रमधनिया किसी से कम न थी। चार औरतों का काम अकेली कर लेती थी। उसे अपनी मेहनत पर अभिमान था। बाप के यहाँ जब तक रही अपनी कमाई का उसे भरोसा रहा। धान सोहना, कुट्टी काटना इत्यादि पुरुषों के काम भी वह हँस-खेलकर कर सकती थी। चक्की, चूल्हा, चर्खा इत्यादि स्त्रियों के कामों को तो वह कुछ समझती ही न थी। परन्तु इधर इस ज्वर की बीमारी ने उसे अपाहिज-सा बना दिया था।

ज्वर से मुक्ति पाकर उसका शरीर हिलने-डोलने लगा। सास, जो बीमारी के दिनों में कभी रमधनिया की ओर झाँकती भी नहीं थी, अब वह भी अपनी आज्ञाएँ फटकारने लगी। और रमधनिया ने, शरीर में शक्ति न रहने पर भी उनका पालन किया। रमधनिया का ज्वर अवश्य टूट गया, परन्तु वह अपना पुराना स्वास्थ्य उसे प्राप्त न हो सका। प्रसव-काल की दुर्दशा ने उसे जीवन-भर के लिए रोगी बना दिया, स्वास्थ्य नष्ट कर दिया।

दातादीन जब दिन-भर का थका-माँदा सन्ध्या को रोटी खाने घर आता तो बच्ची पीढ़े पर लेटी मिलती। दातादीन पर उसे एक बार गोद में लिए बिना न रहा जाता। चन्दू की माँ इसे दातादीन का छिछोरापन समझने लगी।

दातादीन और उसकी स्त्री वास्तव में परेशान थे अपने बेटे चन्दू की हरकतों से और उनका क्रोध उतरता था रमधनिया पर। रमधनिया ने चन्दू पर जादू क्यों नहीं किया, उसकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियों को बाँध क्यों नहीं लिया? यही तो योग्य स्त्री का पहला काम है कि

वह अपने पति को बाँधकर घर के काम पर लगाये। चन्दू की माँ ने किस प्रकार दातादीन को तौंस-तौंसकर घर के काम पर लगाया था, उसे अपना वह समय अभी भूला नहीं था।

रमधनिया का स्वास्थ्य अब पहले से कुछ अच्छा था। चक्की, चूल्हा और घर का सब काम-काज कर लेती थी। वह काम से थककर अपनी बच्ची को दो घड़ी बैठकर दूध पिलाती, उससे अटपटी बातें करती और वह भी टुकुर-टुकुर रमधनिया की ओर निहारती थी। रमधनिया को पहचानती थी वह। कुछ-कुछ होर करने लगी थी।

कभी-कभी बच्ची आप ही-आप पड़ी-पड़ी मुसकराती और हँसती तो रमधनिया का मन उस खिलौने को देखकर गद्‌गद हो जाता। उसके जीवन की समस्त पीड़ा जाने कहाँ चली जाती! वह प्यार से अपना मुँह बच्ची के मुख से लगाकर टिका देती और आँखें बन्द करके आनन्द-विभोर हो उठती। बच्ची का कोमल मुख, ठोड़ी पर गड्ढा, सुनहली अलकें, गोरा रंग, मोटी-मोटी आँखें सभी नयनाभिराम थे। वे सभी के लिए आकर्षक थे और रमधनिया के लिए तो मानो विधाता ने समस्त सृष्टि का सौन्दर्य कूट-कूटकर उसी बच्ची में भरा था। उसने ऐसा सुन्दर बालक आज तक के अपने जीवन में नहीं देखा था!

बच्ची का नाम दातादीन ने भुनिया रखा। साथ ही भुन-भुन करने वाली हलकी-सी चाँदी की भाँवरें भी उसके पैरों में पहना दी और फिर उठाकर प्यार से चुमकारा।

अब भुनिया दातादीन को बहुत अच्छी लगने लगी थी। दोपहर और शाम को जब वह खाना खाने के लिए आता तो खाने के पश्चात् दो घड़ी दुवारी में पड़े पीढ़े से भुनिया को उठाकर अवश्य खिलाता था। घर में लड़की पैदा होने की बात अब पुरानी पड़ चुकी थी।

दातादीन को अपनी मेहनत पर भरोसा था। चन्दू का ब्याह करते ही उसने साहूकार का कर्ज बहुत जल्द उतारने की कसम खाकर लंगोटा कस लिया। मेहनत में सारा गाँव जानता था कि दातादीन ने बड़ा

दिन-को-दिन और रात-को-रात नहीं गिना। भयंकर सर्दी की दाँतों को किटकिटा देने वाली रातों में भी वह अकेला ही कसला (फावड़ा) कन्धे पर रखकर गाँव से चार मील दूर नहर-पार सुनसान जंगल में पानी लगाने खेतों पर जाता था। आस-पास के खेत वालों को भी दातादीन की बहादुरी का सहारा था।

परन्तु इधर कुछ दिन से उसका स्वास्थ्य खराब चला आ रहा था। चन्दू उसके कहे में नहीं चला, यह उसके जीवन में एक समस्या आ गई।

उसने दुर्भाग्यवश अपने चन्दू को गाँव के मदरसे में दर्जा चार तक पढ़ा लिया। यह उससे भारी भूल हुई। मदरसे के लड़कों की सोहबत में चन्दू बीड़ी पीना, ताश खेलना, गुल्ली-डण्डा बजाना, इधर-उधर के गाँवों में गन्दे स्वाँग-तमाशे देखने के लिए चुपके से खिसक जाना और कभी-कभी कुछ आवारागर्दों की टोली में बैठकर गाँव की खिंची हुई शराब में चुस्की लगाना सीख गया। मेहनत से उसका मन उचट गया।

दातादीन ने समझाने-बुझाने के पश्चात् उसे करारी मार भी लगाई, परन्तु चन्दू पर उसका कोई असर न हुआ। उलटा वह घर से रफूचक्कर हो गया। बेचारे दातादीन पर और मुसीबत आ गई। उसकी बीमारी के समय उसके काम में हाथ बँटाने से तो गया उलटा काम-काज छोड़कर उसकी खोज के लिए उसे निकलना पड़ा। निकलता कैसे नहीं ? घर में जाता तो चन्दू की माँ बूढ़ी शेरनी की तरह उस पर झपटकर आती। रमधनिया अलग मुँह लटकाये आँखों से आँसू बरसाती दिखलाई देती, मानो घर में कोई मर गया था। दातादीन बड़बड़ाता कड़क-कड़ककर अपना साहस बटोरता हुआ कहता—"अच्छा ही हुआ नालायक मेरी आँखों से ओझल हो गया। आँख फूटी, पीर गई। और भेज अपने लाल को मदरसे बाबू बना दे इसे।"

दातादीन की दृष्टि में चन्दू की आवारगी का पूरा-पूरा दोष मदरसे वाले पर था। यदि वह मदरसे न जाकर शुरू से ही ढूर-डँगर सम्भालता, ˆ-डाँटे से मन लगाता, गाय-भैंसों का काम करता, कुट्टी काटता तो

यह दिन क्यों नसीब होता ?

"मदरसे भेजने को कहेगा अब ! मेरे लाल की मार-मारकर हड्डियाँ तोड़ दीं। उसे नहीं कहेगा। सयाना-समाना लड़का है—इतने बड़े बेटों को भी कहीं इस तरह मारा जाता है ? मेरी गोद खाली कर दी तूने।" ललकार कर चन्दू की माँ रोती हुई बोली और माथा पीटकर चौक में गिर गई।

"मैं नहीं जाता उस पाजी को ढूँढ़ने। अपने बेटे के कारनामे सुनेगी तो दाँतों-तले उँगली दबा जायगी। जानती नहीं है उस जोगी के बेटे रमला और नाई के लड़के कन्नू को,—अव्वल दर्जे के बदमाश कहीं के,—उन्हीं की चौकड़ी में बैठने लगा है तेरा लाड़ला। परसों ही तो दरोगा आया था, मार-मारकर खाल उड़ा दी उन पाजियों की सारे गाँव के सामने। वैसी ही दशा तेरे लाल की भी न हो तो कहना। तूने प्यार-प्यार में कभी काम ही नहीं करने दिया उसे। अब उसे हराम का खाने की बान पड़ गई है। मैं मेहनत करने को कहता हूँ, इसीलिए तो जहर दिखाई देता हूँ। निकम्मा बनाकर तूने ही उसे कहीं का न छोड़ा।"

कुछ भी सही,—चन्दू कैसा भी सही,—आखिर वह दातादीन का बेटा था। प्यार उसके लिए दातादीन के दिल में भी कम नहीं था परन्तु उसके लक्षण दातादीन को बिलकुल ना-पसन्द थे।

दातादीन को घर का सब काम छोड़कर चन्दू की खोज के लिए निकलना पड़ा। बम्बे की आने वाली बारी छोड़ दी, खेतों की नलाई का ध्यान भुला दिया, जानवरों का छप्पर भी छाता-छाता बीच ही में रुक गया। सर्दियाँ कड़ाके के साथ ऊपर को चढ़ चलीं, कोल्हू की बारी छूट गई—सब काम रुक गया। दातादीन ने फटे कुरते पर बहू से टुकड़ी चढ़वाकर पहना। गेंठी जूतियाँ पैरों में डालीं, लाठी हाथ में ली और कन्धे पर गाढ़े की चादर रखकर सुबह-ही-सुबह बिना किसी से कुछ कहे-सुने गाँव से चल दिया अपने चन्दू को खोजने।

दातादीन इधर-उधर बिरादरी के गाँवों में, नाते-रिश्तेदारों में, ढूँढ़-भाल के लिए फक्का बना फिरा, परन्तु कोई लाभ न हुआ—चन्दू का कहीं पता न चला। लाचार पाँचवें दिन, गरदन नीची किये, उदास चेहरे से वापस लौट आया। इससे अधिक वह कर ही क्या सकता था! खेत सूखे जा रहे थे,—बैलों और जानवरों की खोरों में कल्लू ठीक से न्यार डालता था या नहीं, इसकी भी उसे चिन्ता थी; क्योंकि यदि बैल बैठ जाते तो वह कहीं का भी न रहता! कल्लू चमार दातादीन का पुराना नौकर अवश्य था, परन्तु खेती करना वह बेचारा क्या जाने!

चन्दू छः दिन तक नहीं लौटा। रमधनिया बहुत दुखी थी। यह सच था कि चन्दू ने आज तक कभी रमधनिया के दिल का हाल नहीं पूछा, दो-चार बार अपनी माँ के कहने से उलटी उसके साथ डाट-फटकार, गाली-गलौज और मार-पीट ही की होगी परन्तु वह उसका पति था। उसकी दुनिया सूनी थी चन्दू के बिना। उसकी माँग का सुहाग था वह। वह चाहती अवश्य थी कि चन्दू से कभी खुलकर बातें करे परन्तु साहस नहीं होता था। चन्दू घर में आता ही कम था और यदि आता भी था तो अपने काम-से-काम। उसे शौक ही केवल अपने खाने-पहनने का था। इसके अतिरिक्त उसे किसी बात का भी ध्यान नहीं था।

चन्दू की माँ बैठी-बैठी आज अचानक ही आग-बगूला हो गई। चन्दू की स्मृति उसके नेत्रों में घूम रही थी। कई दिन हो गये थे उसे रोते-रोते। खाना भी नहीं खाया था उसने। खाना रमधनिया भी नहीं खा सकी थी। वह रमधनिया से बोली, "डायन! तूने मेरे लाल को भगाकर ही दम लिया। बस, अब मेरा लाल नहीं लौटेगा।"

रमधनिया से भी न रहा गया। सास के सामने उसने कभी कुछ न बोलने की कसम खाई थी, परन्तु आज उसे अपनी वह कसम तोड़ देनी पड़ी। उसने कहा, "माजी! उनके चले जाने का कष्ट आपको बहुत

अधिक है यह मैं जानती हूँ, क्योंकि आप उनकी माँ हैं, परन्तु मेरा भी तो सर्वस्व लुट गया, कभी आपने सोचा ?"

इतना कहकर रमधनिया दुवारी से उठकर कोठे में चली गई। वहाँ बाँस की पट्टी वाली भोली खाट पर एक पोतड़े में लिपटी भुनिया पड़ी थी। भुनिया खेल रही थी अकेली-ही-अकेली फुदक-फुदककर। अपने हाथों की मुट्ठियाँ बाँधे उन्हें हवा में नचा रही थी और पैरों की भाँवरें कभी-कभी बज जाती थी। रमधनिया खटिया के पास पीढ़ा डालकर बैठ गई और भुनिया को दूध पिलाने के लिए गोद में उठा लिया।

भुनिया अब माँ को खूब पहचानती थी। माँ को देखकर भुनिया का फूल-सा मुख खिल गया। रमधनिया ने अपने हृदय का भार हलका करने के लिए भुनिया को सीने से लगाया, बार-बार चुमकारा,—और वास्तव में उसका कष्ट कुछ कम हुआ, उसे कुछ सहारा मिला। रमधनिया कितनी ही देर तक भुनिया को अपने सीने से चिपकाये आँखों से अश्रु-धारा बहाती रही, अपने हृदय का भार हलका करती रही।

चन्दू सातवें दिन स्वयं लौट आया। ढुलमुलाता-ढुलमुलाता घर में घुसा तो रमधनिया ने कोठे के अन्दर से ही उसको देखकर जीवन का सुख पा लिया और माँ ने तो न जाने कितनी बार उसे अपने सीने से लिपटा-चिपटाकर बलायें लीं, मनौतियाँ मानीं और देवी का प्रसाद बोला।

परन्तु दातादीन ने चन्दू से एक भी बात नहीं की। दातादीन को आज बुखार था और बुखार में भी वह हल जोतने के लिए गया था। अभी परसों ही तो हलका-सा छींटा पड़ा था, जमीन सूखी जा रही थी। यदि जमीन को वह इस समय न दाब लेता तो एक दाना भी पैदा न होता। बुखार दो-चार दिन में छूट ही जायगा।

चन्दू चुपके-चुपके घेर में घुसा और एक तरफ पड़ी खटपावड़ी उठा-कर बैलों के नीचे से गोबर अलग करता हुआ उनकी खोरों तक पहुँच

गया। न्यार में हाथ डालकर जरा चले इधर-उधर फिरोला ग्रौर फिर किसी तरह दातादीन की खाट तक पहुँचा। दातादीन को तेज बुखार था, तमाम शरीर जल रहा था, होंठ सूख रहे थे। चन्दू को देखकर मानो उसका सारा बुखार उतर गया, शरीर की सब जलन जाती रही ग्रौर होंठों की खुश्की दूर हो गई। चन्दू लाख बुरा था, परन्तु पुत्र-स्नेह का स्थान उन बुराइयों से ऊपर था, यह दातादीन ने ग्राज ग्रनुभव किया।

परन्तु दातादीन झुका नहीं ऊपर से; बुखार में भी गरजकर ही बोला,—"इतने दिन कहाँ रहा नालायक? शर्म-हया नहीं रही तुझ में! मैं जानता हूँ तू एक दिन मेरे नाम को बट्टा लगाकर रहेगा। पट्टों में तेल लगाना जो सीखा है तूने। लुच्चे-लफङ्गों की सोहबत तुझे बरबाद करके छोड़ेगी। तू ग्राप तो डूबेगा ही, हमें भी डुबाकर दम लेगा।" कहते-कहते दातादीन का हलक सूख गया।

चन्दू ने कुछ जवाब नहीं दिया। दातादीन की बातें इस कान सुनीं ग्रौर उस कान निकाल दीं। कुछ देर दातादीन की खाट के पास गरदन नीचे किये खड़ा रहा।

तभी उसकी दृष्टि दूर नीम के नीचे गई तो देखा रमला ग्रौर कन्नू खटिया पर बैठे मौज से बीड़ी सुट्या रहे थे,—चन्दू से रुका न गया। वह किसी तरह दातादीन से कन्नी काटकर सीधा नीम के पेड़ के नीचे ग्रपनी चाण्डाल-चौकड़ी में पहुँच गया।

चन्दू ने मन में समझा कि दातादीन ज्वर में बेसुध पड़ा था, परन्तु दातादीन को ग्रपने ज्वर से चन्दू के चाल-चलन की कहीं ग्रधिक चिन्ता थी। उसने चन्दू के खिसकते ही भाँप लिया कि हो-न-हो, ग्रावारा दोस्तों के पास ही गया होगा।

दातादीन ने घर से बाहर दृष्टि फैलाई तो नीम के पेड़ के नीचे रमला, कन्नू ग्रौर चन्दू बीड़ी के लम्बे-लम्बे कश खींचते दिखाई दिये। यह दृश्य देखकर दातादीन के तन-बदन में ग्राग लग गई। उसने चादर से ग्रपना मुँह ढाँप लिया ग्रौर मन-ही-मन कहा, "पाजी कहीं के। जिसे

चन्दू को लाड-प्यार में बिगाड़ देने वाली उसकी माँ ही थी।

इसी समय चन्दू की माँ अपने पुरोहित को जीमने का न्यौता देकर यहाँ आई। उसे पता नहीं था कि दातादीन इस तरह तेज बुखार में पड़ा जल रहा था। उसने धीरे से उसकी चादर खिसकाते हुए विनीत नम्र-भाव से कहा, "मैंने कहा, सुना तुमने! चन्दू लौट आया। अब भगवान् के लिए कुछ न कहना उससे। कहीं ऐसा न हो कि वह फिर घर से चला जाय।"

"बहुत अच्छा।" हृदय के भाव हृदय में ही समेटकर दातादीन ने कहा, परन्तु उसके जलते हुए लाल अंगारों-जैसे दोनों नेत्र अभी तक ज्यों-के-त्यों चन्दू की माँ के मुख पर टिके थे।

चन्दू की माँ झिझक गई। उसने दातादीन का माथा छुआ तो वह जल रहा था। वह धक् से रह गई। नीचे का दम नीचे और ऊपर का ऊपर। घबराकर बोली,—"इतना तेज ज्वर!"

"हाँ, इतना तेज ज्वर! और मुझे इतने तेज ज्वर में ही पड़ा छोड़कर तेरा लाड़ला वह सामने बैठा रमला और कन्नू-जैसे आवारागर्दों के साथ गुलछर्रे उड़ा रहा है।" कहकर उसने गम्भीरतापूर्वक सामने नीम के पेड़ की ओर संकेत किया। चन्दू रमला और कन्नू के साथ बैठा बीड़ी पी रहा था।

चन्दू की माँ मुँह से एक शब्द भी न बोली। चक्कर खाकर वहीं भूमि पर बैठ गई। वह गिर जाती, यदि दातादीन ने परिस्थिति को भाँप न लिया होता। दातादीन ने इतने तेज ज्वर में भी विद्युत की गति से उठकर चन्दू की माँ को अपनी अंक में भर लिया और उठाकर खटिया पर लिटा दिया।

चन्दू की माँ अचेत हो गई। पाँच-छः दिन से वह भूखी थी, चन्दू के लिए। परन्तु जब उसने उसी चन्दू का व्यवहार, दातादीन के साथ

पर क्रोध आया। आज तक सर्वदा ही उसने चन्दू की भूलों को दूसरों के सिर थोपने का प्रयास किया था और जब उसे थोपने के लिए कोई अन्य नहीं मिला था तो उसने अपने सिर ले लिया था उन्हें,—परन्तु आज वह ऐसा न कर सकी। उसे जीवन में एक जोरदार धक्का लगा, —भुनिया के पैदा होने से भी अधिक जोरदार।

दातादीन चन्दू की माँ को खाट पर लिटाकर कुएँ की ओर लपका और एक डोल पानी खींच लाया। उसके मुँह पर ठण्डे पानी के छींटे दिये तो उसे होश आया। उसके मुँह से बेहोशी में ये शब्द निकले, "इतना तेज ज्वर !" और नेत्र खुले तो उसने अपने को खटिया पर पड़ा और दातादीन को ज्वर में जलते हुए भी नेत्रों में आँसू लिए खटिया के पास जमीन पर बैठकर उसके माथे पर हाथ रखे पाया।

"चन्दू की माँ !" उसके नेत्र खुलने पर दातादीन ने व्यग्रतापूर्वक कहा।

चन्दू की माँ उठ बैठी, बैठकर बोली, "मुझे ऐसा लगा जैसे मैं अचेत हो गई।"

"हाँ चन्दू की माँ तू बेसुध हो गई थी।" उसे सँभालते हुए दातादीन ने कहा; परन्तु अब भी चन्दू की माँ ठीक नहीं थी। कुछ घबराहट थी उसके दिल पर। चेतना धीरे-धीरे लौट रही थी।

"अब मैं कुछ नहीं कहूँगा चन्दू की माँ ! तुम्हारे चन्दू को।" दातादीन ने दीनता से उसके नेत्रों में कोमलता से झाँकते हुए कहा।

परन्तु चन्दू की माँ को क्रोध आ गया। वह सिंहनी के समान गरजकर बोली, "तुम नहीं कहोगे उस पाजी को,—परन्तु मैं उसे घर में नहीं घुसने दूँगी। कहीं भी जाय, कुछ भी करे। हमसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं ? मैं फूटी आँखों भी उसकी शक्ल देखना नहीं चाहती।" और कहती-कहती वह फिर दुर्बलता में अचेत हो गई।

दातादीन ने चन्दू की माँ के जीवन में यह आकस्मिक परिवर्तन

दृष्टि गई जिसका कभी स्वप्न में भी विचार नहीं किया था। वह धीरे-धीरे अपनी गर्म हथेलियों से चन्दू की माँ के स्वेदपूर्ण मस्तक को सहला रहा था। उसने अनुभव किया कि उसका मस्तक किसी भी प्रकार उसकी गर्म हथेलियों से कम जलन लिए हुए नहीं था। दातादीन ने अनुभव किया कि उसकी स्त्री में अपने साथी के लिए कितना प्यार था, कितना मान था, कितनी श्रद्धा थी!

साधारण भावुकता में पसीज जाने वाले चन्दू की माँ के नेत्र आज सूखे पड़े थे और उसकी पुतलियों के चारों ओर का सफेद भाग रक्तिम हो गया था। पलकें स्थिर थीं और कानों की लौ अङ्गारों के समान जल रही थीं। उसका श्वास तीव्र हो गया।

यह दशा देखकर दातादीन भयभीत हो उठा और उसके हाथ-पैर काँपने लगे। थोड़ी देर में उसने देखा कि चन्दू की माँ बहुत तेज ज्वर में *बड़बड़ा रही थी। वह कह रही थी, "नालायक ने मेरी कोख लजा* दी। ऐसा जानती तो पैदा होते ही गला घोंट देती। नालायक औलाद से बाँझ भली।"

चन्दू की माँ के इन शब्दों ने दातादीन के हृदय को कितनी सान्त्वना प्रदान की, यह कहना कठिन था। दातादीन अपना ज्वर भूल गया। अपनी चिन्ता उसे न रही और वह उसी प्रकार चन्दू की माँ को खाट पर लिटाकर घर ले गया।

रमधनिया ने यह सब देखा तो वह धक से रह गई। उसने तो सास की आज्ञा से खीर बनाई थी, पण्डित को जिमाने के लिए। गेहूँ के चकला-बेलन वाले पतले-पतले फुलके थे। वह प्रतीक्षा में थी कि उसकी सास आती ही होगी और पण्डित को जिमायेगी।

खाना उसी तरह चूल्हे पर छोड़कर वह उधर झपटी और सास के माथे पर हाथ रखकर देखा,—बहुत तेज ज्वर था। कुछ न समझ

करो। मेरी माँ बदन ज्वर से टूटा जा रहा है।" दातादीन वहीं जमीन पर बैठ गया। उसका सिर चकरा रहा था।

एक विचित्र विपत्ति आ गई रमधनिया के सिर पर। घबराहट से बदन पसीना-पसीना हो गया।

तभी चन्दू की माँ का न्यौता हुआ ब्राह्मण भी आ पहुँचा। दातादीन ने पण्डित का मुँह देखकर बहू से कहा,—"बहू! पण्डित को जिमा दो। चन्दू की माँ जीमने को कह आई होगी।"

"हाँ, हाँ चौधराइनजी ने न्यौता दिया था, चन्दू बेटे के लौट आने की खुशी में।" काले पण्डित ने मूँछे तिड़काकर कन्धे पर अंगोछा डालते हुए कहा और फिर संस्कृत का-सा एक श्लोक पढ़ा, मानों वह इस परिवार को आशीर्वाद दे रहा था।

पण्डितजी दातादीन की बीमारी और चन्दू की माँ के खाट पर लेटे होने की बात पूछे बिना जल्दी ही में बोले, "जरा जल्दी करो बहू-रानी! अभी और कई घरों में जीमने जाना है। मैंने सोचा पहले यहीं का काम निपटाता चलूँ।"

"हाँ, हाँ बहू! पण्डितजी को खाना खिला दो।" धर्मभीरु दातादीन बोला और स्वयं चन्दू की माँ की खाट के पास ही दीवार से कमर लगाकर बैठ गया। इस समय उसे अपनी बीमारी से अधिक चन्दू की माँ के न्यौते हुए ब्राह्मण को जिमाने की चिन्ता थी।

पण्डित जीमकर और चवन्नी दक्षिणा को लेकर दातादीन के घर से विदा हुआ। चन्दू की माँ ने कुछ नहीं खाया। दातादीन ने बहू के आग्रह पर मूँग की दाल का पानी पी लिया। आज रमधनिया ने भी चन्दू को खाना खिलाकर खाना खाया,—छै दिन बाद।

चन्दू की माँ का ज्वर छै दिन हो गये, कम नहीं हुआ। एक बार

जबान से नहीं हुई। केवल गंगाजल कभी बहुत कहने से तनिक-सा पी लिया।

दातादीन का ज्वर दूसरे दिन कुछ कम हो गया और तीसरे दिन बिलकुल छूट गया। उसने चन्दू की माँ के स्वास्थ्य के लिए पण्डित को न्यौता, बछिया दान की परन्तु किसी ने वार न खाया। रमधनिया ने जो कुछ भी गाँव की किसी बड़ी-बूढ़ी ने कहा, सभी कुछ किया परन्तु चन्दू की माँ ने नेत्र न खोले, ज्वर न उतरा।

चन्दू को अपने चार दोस्तों से जब अवकाश मिलता तो जाहिरदारी निभाने के लिए माँ के पास आता, बैठता, परन्तु माँ उससे एक शब्द न बोलती। माँ बोल ही न सकी कुछ, उसे सदमा पहुँचा, उसके नारीत्व को ठेस लगी। चन्दू ने अपनी हरकतों से अपनी माँ के स्वाभिमान को कुचल दिया।

दातादीन ने जब यह समझ लिया कि अब चन्दू की माँ नहीं बचेगी तो वह उदास मन उसकी खाट की पट्टी के पास बैठकर बोला,—"चन्दू की माँ! ऐसी कठोर तो तू जीवन में कभी नहीं हुई।" इतना कहकर वह मुनिया को गोद में लेकर बोला,—"हमारी ओर नहीं देखती तो अपनी पोती की ही ओर जरा देख चन्दू की माँ!" तरसते नेत्रों से दातादीन ने चन्दू की माँ के मुख पर देखा।

चन्दू की माँ ने दातादीन के इन शब्दों को सुनकर नेत्र खोल दिए। चन्दू की माँ ने मुनिया को लेने के लिए हाथ भी बढ़ाने का प्रयास किया, परन्तु हाथ ऊपर न उठ सके। दातादीन मुनिया को उसके निकट ले गया। चन्दू की माँ के नेत्रों में आँसू भर आये। मुनिया रो पड़ी,—शायद डरकर उसके नेत्र फिर बन्द हो गये।

चन्दू की माँ मरी नहीं,—दस-पाँच दिन के काया-कष्ट के पश्चात् खड़ी हो गई, परन्तु चन्दू ने उसकी बीमारी में एक दिन भी सेवा नहीं

जाने ! आज खाना बनाने के पश्चात् जब वह सर्दियों में धूप खाने के लिए मुनिया को लेकर बैठी तो मुनिया उसके पास आकर बैठ गई। मुनिया के सामने रमधनिया अपनी परेशानियों को खोलकर कह डालती थी। आज उसने नेत्रों में आँसू भरकर कहा,—ननदजी ! तुम ही जरा अपने भैया को समझाओ कि वह गाँव की आवारा चौकड़ी में बैठना छोड़ दें। ससुरजी उनकी इस बात से बहुत नाखुश हैं।"

"नाखुश होने की बात ही है रमधनिया ! इस घर को ताऊ ने अपने को मिट्टी में मिलाकर बनाया है। किस मुसीबत से ताऊ ने चन्दू की शादी की,—इसे चन्दू क्या जान सकेगा। परन्तु भाग्य की बात है। जब दिन उलटे आते हैं तो अच्छे-भले आदमियों के भी ऐसे ही खराब लक्षण हो जाते हैं। मत बदल जाती है बहू !" मुनिया ने दिल भारी करके कहा। रमधनिया के दुःख को देखकर मुनिया कभी-कभी अपना भी दुःख भूल जाती थी। वह फिर रमधनिया के मुँह पर देखकर बोली,—"मैं जरूर समझाने की कोशिश करूँगी बहू ! लेकिन चन्दू की सोहबत बहुत बिगड़ चुकी है। जिन लोगों की चौकड़ी में वह बैठता है, वे लोग आस-पास के गाँवों में रात को चोरी करने के लिए जाते हैं, कूमल फोड़ते हैं, अँधेरे-उजाले किसी की बहू-बेटी को पा जाते हैं तो उनकी चीज-बस्त खसोट लेते हैं·········चन्दू ने ताऊ के नाम को भी दाग लगा दिया।"

रमधनिया मुनिया पर विश्वास करती थी। वह जानती थी कि मुनिया ने उसके पति को व्यर्थ उड़ाने के लिए ये बातें नहीं कहीं। उसके हृदय में रमधनिया के लिए सहानुभूति थी।

आज सन्ध्या को थाने का सिपाही दातादीन के मकान पर आ धमका। रमधनिया का कलेजा धक्-धक् करने लगा। उसने घर का दरवाजा बन्द

शर्म से गड़ गया। एक बार दिल में आया कि [illegible]
छलांग लगा जाय, जो काम इस खानदान में आज तक नहीं हुआ, वह आज उसके चन्दू ने कर दिखाया।

चन्दू पुलिस को गाँव में मिल गया। रमला और कल्लू वहाँ पहले ही मौजूद थे। तीनों को पुलिस पकड़कर ले गई और ले जाकर थाने की हवालात में बन्द कर दिया। दातादीन को भी अपमानित किया पुलिस ने।

दातादीन माथे पर हाथ रखे घर आया तो रमधनिया हिड़क-हिड़ककर रो रही थी। चन्दू की माँ की तो दशा ही खराब थी। वह पछाड़ खाये पड़ी थी खाट पर,—कह रही थी, "मेरे लाल को बचाओ, मेरे लाल को बचाओ।"

झुनिया अपनी माँ को रोती देखकर रुँआसी-सी उसके पास खड़ी थी। दातादीन को आता देख वह उसकी ओर लपकी और दातादीन ने अनायास ही उसे गोद में उठा लिया, प्यार भी किया और अपने नेत्रों के आँसू भी उसके कपोलों पर गिराये, बोला वह एक शब्द भी नहीं।

मुनिया का पिता, जो रिश्ते में दातादीन का भाई लगता था, यह समाचार पाकर जंगल से दौड़ा आया और सीधा दातादीन के घर पहुँचा। आदमी सूझ-बूझ का था। तुरन्त दातादीन को साथ ले गाँव के दो-चार और गण्य-मान्य आदमियों से मिला, सलाह-मशवरा किया और उनके साथ थाने की ओर चल दिया।

दरोगाजी को २००) से भेंट-पूजा की गई, तब जाकर कहीं चन्दू की जमानत हुई। यह रकम उस समय मुनिया के पिता ने अपने पास से अदा की, जिसका भुगतान दातादीन ने घर जाते ही रमधनिया की दो

लाख-लाख बलाएँ लीं और प्यार के आवेश में उससे लिपट गई। उसका मातृ-स्नेह उमड़ आया और उसके प्रवाह में चन्दू की सब नालायकी न जाने कब और किस ओर बह गई! उसका ध्यान भी नहीं जा सका उस ओर। दातादीन चन्दू को पुलिस से छुड़ा लाया—चन्दू की माँ को अभिमान था अपने पति पर, उसकी बहादुरी और योग्यता पर।

दातादीन चन्दू को छुड़ा अवश्य लाया लेकिन उसके दिल पर बहुत गहरी चोट लगी। उसे शर्म आने लगी अब गाँव में भाई-बिरादरी के अन्दर बातचीत करते। उसकी गरीबी कभी उसकी शर्म का कारण नहीं बनी थी, परन्तु उसके चन्दू की गिरफ्तारी ने उसका स्वाभिमान उससे छीन लिया। उसे वह अपने ही में कुछ हेय-सा, कुछ कम-सा, कुछ निर्बल-सा जँचने लगा। वह अब सभी से अपने को बचाकर चलने का प्रयत्न करता था।

चन्दू की गिरफ्तारी का प्रभाव रमधनिया पर भी पड़ा और उसे लगा कि मानो गाँव की सब स्त्रियाँ उससे मिलने मे कतराती थीं। यदि मिलती भी थीं तो सहानुभूति के साथ नहीं, सहृदयता के साथ नहीं। शायद वे यह भी समझती हों कि चन्दू चोरी का माल रमधनिया को लाकर देता था और रमधनिया अपने पति के सब लच्छनों को जानती थी,—छुपाती थी।

परन्तु रमधनिया से चन्दू की कभी कोई घनिष्ठता की बात नहीं हुई। आज रमधनिया ने निश्चय किया कि वह चन्दू से अवश्य बातें करेगी; परन्तु कहाँ—उसे तो उलटी मार खानी पड़ी। चन्दू ने आज रमधनिया को बहुत मारा,—बहुत मारा। चन्दू की माँ ने भी चन्दू को मारने में प्रोत्साहन न देकर बहू को बचाने का ही प्रयास किया परन्तु इस बचाने-बचाने में एक लात उसे भी खानी पड़ी और वह चारों खाने

रमधनिया के कहने का उस विश्वास नहीं...

दातादीन वहाँ आ गया। दातादीन बुढ़ापे में भी शेर था। गरजकर बोला—"क्या बात है बहू ?"

बहू कुछ नहीं बोली, केवल रोती रही।

दातादीन कुछ न समझ सका। एक ओर पड़ी चन्दू की माँ चीख-पुकार कर रही थी अपने पेट को पकड़े।

दातादीन चन्दू की ओर लाल-पीली आँखें निकालकर बोला,—"शर्म-हया नहीं रही नालायक ! सब पर हाथ उठाता है,—माँ पर भी हाथ छोड़ बैठा,—मुझे बतला तू क्या चाहता है ?"

चन्दू बोला नहीं एक शब्द। चुपचाप घर से बाहर हो गया।

चन्दू के चले जाने पर दातादीन बोला,—"कर्मों की गति है ! दोष मेरा ही है कि इस नालायक की शादी की। मैं समझा था कि शादी होकर रास्ते पर आ जावेगा। लेकिन यह न सुधर सका······।" इतना कहकर दातादीन चुप हो गया। उसका सिर चकरा रहा था। वह जैसे आया था उसी तरह घर से निकल जाना चाहता था, लेकिन इसी समय दुवारी के बाहर से झुनिया दौड़ी हुई आई और आकर दातादीन से लिपट गई।

दातादीन बाहर जाता-जाता झुनिया को गोद में लेकर फिर अन्दर लौट आया और कितनी ही देर तक उसे गोद में लिए कोठे के सामने दालान में घूमता रहा,—और जाने क्या-क्या सोचता रहा !

रमधनिया ने खाना बनाने के लिए उपलों का उम्हौना लगा दिया और चूल्हे के पास सरसों का साग इछाने के लिए बैठ गई। फिर उसने साग दराँती से काटा और पतीली में भरकर आँच पर चढ़ा दिया।

झुनिया अब खूब बातें करती थी ...
मूँछों को भी जब-तब पकड़ लेती थी। प्यार से उसकी गरदन में लिपट कर बोली,—"बाबा, हमें बापू कभी गोदी नही लेता।"

"वह नालायक है बेटी !" दातादीन ने झुनिया को छाती से लगाकर कहा,—"तेरी माँ तो प्यार करती है तुझे। दुनिया में सभी लोग प्यार करने के लिए पैदा नही होते।"

"क्यों नही होते बाबा ?" झुनिया ने आश्चर्य से पूछा।

"उनका दिल पत्थर का होता है। वे बदमाश होते है।" दातादीन कहता गया।

"पत्थर का दिल ! कहकर झुनिया हँस पड़ी। झूठ, बिलकुल झूठ, बहका रहे हो बाबा ! दिल भी कही पत्थर का होता है !"

दातादीन कुछ बोला नहीं, चुप हो गया। उसका मन चन्दू की तरफ से इतना क्रुद्ध था कि उसके विषय में बात चलने से उसके दिल का घाव हरा हो जाता था। वह धूर्त्त क्या जाने कि उसने दातादीन की दुनिया ही बदल दी। चन्दू की इन हरकतों से कभी-कभी दातादीन उसकी माँ पर भी झल्ला उठता था और इधर-उधर की अनर्गल बातें भी कह डालता था,—एक झगड़ा-सा हो जाता था दोनों के बीच; परन्तु बहू बीच में पड़कर कभी उसे आगे नहीं बढ़ने देती थी। हर बात को भाग्य पर टाल देने का सुगम गुर उसने सीखा था।

दातादीन झुनिया को उसकी माँ के पास गोदी से उतारकर चुपचाप घर से बाहर जाने लगा तो रमधनिया ने घूँघट की ओट से ही धीरे से कहा,—"खाना अभी बना जाता है।"

"अच्छा बहू !" दातादीन ने कहा और वह दुवारी में होकर बाहर गली में निकल गया। रमधनिया अपनी सास और दातादीन के खाने का बहुत ध्यान रखती थी।

[illegible]
देखी। दूसरी ओर उसका बेटा चन्दू...बस इससे आगे उसकी विचार-धारा मौन हो जाती थी। परन्तु अपने विचार से अब वह क्षमा नहीं कर पाता था चन्दू की माँ को। चन्दू के बिगड़ जाने का उसीको वह प्रधान कारण समझता था और साथ ही अपनी मूर्खता पर भी उसे तरस आता था कि उसने कभी उस ओर ध्यान ही नहीं दिया। औरत का भरोसा किया। दातादीन के जीवन का पहला उठान कितना शानदार था, कितना स्वाभिमानपूर्ण, कितना गौरवयुक्त! बुजुर्गों का कर्ज उसने उतारा, परन्तु जीवन के अन्तिम काल में उसका सिर कर्ज के भार से दबा जा रहा था, उसकी गरदन टूटी जा रही थी।

क्यों, दातादीन ने सहयोग दिया था अपने पिता के काम में, बल दिया था उसकी बूढ़ी हड्डियों में अपनी जवानी हड्डियाँ जोड़कर? दातादीन की भुजाओं पर चमकने वाली मछलियों को देखकर कार्य की कठिनाई आगे-आगे हो लेती थी, आसान हो जाती थी और आज उसके थके-माँदे शरीर के सामने वही कठिनाई अपना विकराल रूप धारण किये उपस्थित थी।

दातादीन का हाथी-जैसे शरीर वाला चन्दू, जिसके जमीन पर एड़ी मारने से पानी निकल सकता था, दातादीन के साथ जीवन-संघर्ष में सहयोग करके नहीं चल रहा था, बल्कि उलटा उसे पीछे ही घसीटता जाता था।

कभी-कभी वह एकान्त में बैठकर सोच उठता था रमपतिया के भविष्य पर। यदि दातादीन अपने जीवन-काल में साहूकार का रुपया चुकता न कर पाया तो वह निश्चय ही एक दिन रमपतिया और मुनिया को इस घर और जमीन से बेदखल करा देगा। चन्दू से उसे कोई आशा नहीं थी।

बात नहीं थी। प्यार से, मार से, डांट से, फटकार से, लोभ से, लालच से, सभी तरह समझाया, परन्तु सब व्यर्थ,—सब फिजूल। भाई-बिरादरी वालों ने समझाया, नाते-रिश्तेदारों ने कहा-सुनी की, परन्तु चन्दू के कान पर जूँ तक न रेंगी। पता नहीं उन रमला और कन्नू ने उसे क्या घोलकर पिला दिया था कि उनके साथ बैठना वह न छोड़ सका। अपने माता-पिता, बहू, बच्चों,—सभी को छोड़ना उसे मंजूर था, परन्तु उन यारों को छोड़ना उसे मान्य नहीं था।

रमला और कन्नू के कहने से ही उस दिन चन्दू अपनी सीता-सी पतिव्रता स्त्री को पिशाच की तरह मारने पर जुट गया था। इन्हींकी चौकड़ी ने उसे अपने बीमार माता-पिता की सेवा से वंचित कर दिया था। इन्हींके साथ रहकर उसका नाम पुलिस के रजिस्टर में दर्ज हो गया और अब रोजाना पुलिस का सिपाही उसकी निगरानी के लिए आता था,—आजकल रमला और कन्नू ही मानो उसके लिए सब-कुछ थे,—विधाता थे।

शायद उनकी जिन्दगी के कुछ ऐसे गहरे राज बन गये थे कि जिनका महत्व उसके जीवन से अधिक महत्वपूर्ण हो उठा था।

अब तो दातादीन ने कुछ दिन से चन्दू के विषय में सोचना ही बन्द कर दिया था। दातादीन को अब रमधनिया और भुनिया के ही जीवन की चिन्ता थी। यदि किसी प्रकार वह साहूकार का कर्ज अदा कर पाता तो कभी अपनी सम्पत्ति का वारिस चन्दू को न बनाता,—रमधनिया को ही सौंपता अपना सब-कुछ, इस समय दातादीन की यही इच्छा थी।

दातादीन ने लाख मेहनत की, लाख सिर पटका, लाख चित्त-पट्ट करने का प्रयास किया, परन्तु वह किसी प्रकार भी अपनी आमदनी न बढ़ा सका। कभी कोई, तो कभी कोई आपत्ति उसके मार्ग में आई और फसलें कभी भी पौ-बारह की न हो पाईं। एक साल ओला पड़ गया,

एक-एक वर्ष बीच में छोड़कर दैविक विपत्ति का दातादीन को सामना करना पड़ा।

चन्दू की परेशानी भी जब-तब बीच में आ खड़ी होती थी।

साहूकार के प्रथम तीन वर्ष की मियाद समाप्त होने पर साहूकार ने असल में सूद जोड़कर दूसरा कागज लिखा लिया था, परन्तु इस बार वह दूसरा कागज बदलने के लिए तैयार नहीं। दातादीन का यार, साहूकार, घर का सब काम-काज अपने बेटे के सुपुर्दकर जप-तप करने, जीवन-भर के पाप काटने और स्वर्ग का रास्ता तैयार करने बनारस चला गया था। वह अब बनारस में किसी घाट पर रहता था।

साहूकार का बेटा जब किसी तरह न भुचा और कागज बदलने के लिए तैयार न हुआ, दातादीन की चिन्ता का कोई ठिकाना न रहा। वह अन्दर-ही-अन्दर घुलने लगा,—मानों घुन लग गया था उसके शरीर को। रमधनिया से वह क्या कहे?

रुपया लौटाने का कोई प्रबन्ध नहीं था दातादीन के पास। उसने लाख जाकर समझाने की कोशिश की लेकिन साहूकार का बेटा तनिक भी न पसीजा,—वह अपने पिता से कहीं अधिक कठोर निकला।

रमधनिया चन्दू का मुख देखती और सोचती,—'कितना अच्छा होता यदि वह ससुरजी का हाथ बँटाता उनके काम में! हमारे भाग खुल जाते। हमारे सब दुःख-दलिद्दर पार हो जाते। ससुरजी के जीवन का आखिरी समय सुख-शान्ति से कट जाता।' परन्तु कहाँ,—चन्दू का तो ढङ्ग ही बेढङ्गा था। न समय पर आना, न समय पर जाना, न समय पर खाना, न समय पर पीना, न ढङ्ग से बोलना, न ढङ्ग से टना,—सब-कुछ बेढङ्गा था उसका। उसका जीवन मानो उसके ही

साथ चन्दू के सामने खड़ी होकर एक शब्द भी कह सके। न अपनी कहना, न उसकी सुनना।

परन्तु आज चन्दू ने झुनिया को न जाने कैसे गोद में उठा लिया। प्यार भी किया उसने झुनिया को और चुमकारा भी। रमधनिया ने यह देखा तो स्तम्भित-सी रह गई,—मानो कुछ ऐसा हुआ जो इस संसार में सम्भव नहीं, असम्भव था। उसका रोम-रोम खिल उठा। उसकी बच्ची को चन्दू ने प्यार से चुमकारा, उसे स्वर्ग मिल गया,—स्वर्ग का आनन्द !

चन्दू ने गोद से झुनिया को उतारा तो वह दौड़कर सीधी रमधनिया के पास आकर प्रसन्नता से खिलती हुई बोली,—"माँ···माँ···बापू ने मुझे गोदी लिया,—प्यार किया, चुमकारा।"

"अच्छा !" कहकर रमधनिया ने झुनिया को गोद में लिया। वेदना को अपने आँचल में ढँक लेने वाला सुख उसे प्राप्त हुआ।

परन्तु संध्या को दातादीन घर आया तो उसकी गरदन लटकी हुई थी। उसकी चाल में दम नहीं था। उसका शरीर अनायास ही घर की तरफ ढुलका चला आ रहा था,—प्रयास-विहीन। कन्धे की चादर नीचे घिसटती आ रही थी और हाथ की लाठी भी लड़खड़ा रही थी, मुट्ठी ढीली पड़ रही थी दातादीन की।

दातादीन जिन्दगी से थक चुका था, ऊब चुका था,—वह एक निर्बल, असहाय और असफल पथिक था,—जीवन की महत्वाकांक्षाओं को फली-भूत करने में नितान्त असफल। उसने जीवन-भर प्रयास किया, मेहनत की, मजदूरी की, परन्तु सफलता न मिल सकी। भाग्य के कोसने से भी आज क्या लाभ ? वह था, शब्द-विहीन।

दातादीन की टाँगों से घर में घुसते ही झुनिया लिपट गई। दातादीन

बैठ गया,—उसका सिर चकरा रहा था।

दातादीन की यह दशा देखकर रमधनिया समझ गई कि अवश्य कुछ दाल में काला है। उसने उठाकर मुनिया को अपनी गोद में लेते हुए घूँघट की ओट से पूछा,—"आज बहुत परेशान दीख रहे हो।"

"हाँ बहू ! परेशानी के लिए ही विधाता ने मुझे बनाया है।" गम्भीरतापूर्वक दातादीन बोला, "लेकिन आज मैं तुझे बता देता हूँ बहू ! क्योंकि मेरे बाद ये परेशानी तेरे ही सिर पर आनी है।"

"आप लेट जायें, परेशान न हों। मुझ पर जो कुछ भी मुसीबतें *भगवान डालेगा, उन्हें मैं सहन करूँगी। आपको दोष नहीं दूँगी",* रमधनिया ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

दातादीन ने गहरी साँस ली और चादर सिर के नीचे रखकर खटिया पर लेट गया। रमधनिया से बोला, "बहू ! बहुत से बुजुर्ग अपने बालकों को मरते समय धन-दौलत छोड़कर मरते हैं *परन्तु मैं यह सब नहीं कर* सकूँगा। चन्दू ने मेरी जिन्दगी का सहारा तोड़ दिया। मुझे एक नाकामयाब आदमी बना दिया। मैंने इधर छै साल तक अकेले भी कोशिश की, लेकिन भाग्य कहूँ या विधाता,—उसने साथ नहीं दिया। चन्दू की शादी में मैंने अपने पास की सब पूँजी के साथ पन्द्रह सौ रुपया अपने सब असासे पर कर्ज लेकर भी लगा दिया था। उसका भुगतान मैं आज तक न कर सका। अब ऐसा लगता है कि शायद कर भी न सकूँगा।" कहते-कहते दातादीन की जबान रुक गई और मस्तक पर पसीना आ गया। नेत्र बन्द हो गये और नासिका के पास नेत्रों के दोनों कोनों में दो मोटे-मोटे आँसू झलक आये।

रमधनिया एक क्षण मौन रहकर गम्भीरतापूर्वक बोली,—"आप *आराम से बैठें। मन भारी न करें। भाग्य में जो लिखा है, वह अवश्य*

मानो इस सारी दुर्दशा का एक मात्र कारण चन्दू ही था,—और था भी वह,—वह !

दातादीन के प्राणहीन शरीर में रमधनिया के गम्भीर शब्दों ने एक बार फिर से प्राणों का संचार कर दिया। उसने झुनिया को उठाकर अपनी छाती पर लिटा लिया और बहुत देर तक उसी तरह आँखें बन्द किये लेटा रहा।

रमधनिया चूल्हे पर जाकर खाना बनाने में लग गई।

: ५ :

चन्दू आज कई दिन से गायब था। पुलिस उसकी तलाश में थी। दातादीन के दोस्त साहूकार के घर डाका पड़ा था और उसीमें चन्दू का भी नाम निकला हुआ था। पुलिस रोजाना दातादीन के घर पर आती थी, बुरा-भला कहती थी, डाटती-डपटती और फटकारती थी,—दातादीन सब सहता, उसके कठोरतम शब्दों को शर्बत के घूंट की तरह पीता और चुप रह जाता था। चुप रहना और सहना ही मानो अब उसके जीवन का गुण बन गया था। जवानी की वह अकड़ और लाठी लेकर तनते हुए चलना, जीवन से लुप्त हो चुका था।

"बूढ़े! बतलायेगा या नहीं चन्दू का पता ठिकाना।" पुलिस के दीवान ने झल्लाकर कहा,—और उसका झल्लाना भी ठीक था। उसे क्या पता था कि दातादीन सन्त के घर चन्दू डाकू पैदा हुआ था। वे कई दिन से परेशान थे चन्दू की खोज में।

"मुझे भगवान के लिए तंग न करो दीवानजी! उस नीच का मुझे कुछ पता नहीं।" गिड़गिड़ाकर दातादीन ने कहा।

बतलायेगा तो हम तुझे ही ले जाकर हवालात में बन्द कर देंगे।"

"घर जैसा मेरा भरा है चन्दू ने, वह तो मेरा दिल ही जानता है सरकार! चूल्हा भी आज बुढ़ापे में किस तरह जलाता हूँ यह कहने की बात नहीं। लेकिन हाँ, यदि इस बूढ़े को ही हवालात में बन्द करने से तुम्हारी तसल्ली हो तो मैं हाजिर हूँ, मुझे ले चलो।" दातादीन बोला।

इतने में गाँव के कुछ और लोग वहाँ आ गये। कुछ तो कनखियों से मुसकरा रहे थे, परन्तु दातादीन के साथ वास्तविक सहानुभूति रखने वाले भी थे। मुनिया का बाप रामू दातादीन के सच्चे हमदर्दों में से था। आगे आकर दीवान से बोला,—"दीवानजी! दातादीन को व्यर्थ तंग करने से आपको कोई लाभ न होगा। यदि दातादीन का कहा चन्दू करता तो आज घर की यह दुर्दशा ही न होती। दातादीन-सा ईमानदार और मेहनती आदमी इस गाँव में दूसरा न मिलेगा।"

मुनिया के बाप के शब्दों में जान थी, बल था, जिसका गाँव के सभी लोगों ने समर्थन किया। कोई कुछ भी खिलाफत में न कह सका,—वातावरण शान्त हो गया। खिलाफ विचार रखने वालों की बातें भी उनके हलक में ही मूल गईं। मुनिया के बाप की खिलाफत में एक शब्द भी कहने का किसी में दम नहीं था। दीवान मुसकराकर आँखें मटका-कर तिरछी करते हुए बोला,—"तब फिर चन्दू कहाँ है?"

"वह कहाँ है और कहाँ नहीं है, इसकी सूचना ही यदि वह दाता-दीन को देता रहता तो वह इतना आवारा आदमी कभी न बनता। आप लोगों को उसे खोजने के लिए इस तरह मारा-मारा न फिरना पड़ता।" गम्भीरतापूर्वक मुनिया के बाप रामू ने उत्तर दिया और अपनी वाक्पटुता [illegible] पर यह सिद्ध कर दिया कि दातादीन चन्दू के भाग जाने के [illegible] में कुछ नहीं जानता, बिलकुल अनभिज्ञ है, निरपराध है और उसे

था। दो दिन से घर के चूल्हे में आग नहीं सुलगी थी। भुनिया को मुनिया ही अपने घर ले जाकर खाना खिला देती थी। दालादीन और रमधनिया के हलक से नीचे खाना नहीं उतरता था। चन्दू की माँ तो पगली-सी हो गई थी। रात-दिन खाट में पड़ी-पड़ी चन्दू-ही-चन्दू की रट लगाती रहती थी। उसे सुध नहीं रह गई थी अपनी। पिछली बीमारी से वह स्वस्थ तो हुई थी परन्तु कुछ खब्त-सा रहता था उसके दिमाग में। उसे कुछ काम ही नहीं था रमधनिया को कोसने के अलावा। वह रमधनिया को ही इस घर के सर्वनाश का कारण समझती थी। इसी समय भुनिया को साथ लिए मुनिया आई और रमधनिया के पास बैठकर बोली,--"बहू ! तुमसे आज एक बात करने आई हूँ।"

"हाँ ननदजी !" रमधनिया ने चर्खा थामकर मुनिया के मुँह पर दृष्टि डालते हुए कहा।

"इस तरह भूखी रहकर प्राण देना कोई अकल की बात नहीं। जरा अपनी भुनिया की ओर देख। इसका इस दुनिया में तेरे अलावा और कोई नहीं। ताऊ और ताई सदा नहीं रहेंगे। चन्दू के ठीक होने की मुझे कोई उम्मीद नहीं,--और फिर अब तो पुलिस उसके पीछे लग गई है। पुलिस जिसके पीछे एक बार लग जाती है उसे कहीं का नहीं छोड़ती। शिकारी कुत्तों की तरह हर वक्त ताक-झाँक में ही फिरती रहती है। ऐसी दशा में तेरा खाना न खाना बड़ी भारी नादानी है। मैं कहती हूँ कि यदि तू अपने लिए न खाए तो कोई बात नहीं, परन्तु तुझे अपनी भुनिया के लिए खाना खाना ही होगा। तूने जन्म दिया है भुनिया को और इसके लिए तेरा कुछ फर्ज है।" मुनिया ने गम्भीरतापूर्वक सहृदयता के साथ समझाया। मुनिया व्याकुल थी इस समय रमधनिया और भुनिया की दशा देखकर। उसके हृदय से

रोने का—माँ जो रो रही थी उसकी।

मुनिया ने रमधनिया का चर्खा उठाकर एक ओर रख दिया और स्वयं उसके चूल्हे में आग सुलगाई। एक पतीली में दाल रँधने चढ़ा दी और परात में आटा उसने दिया। फिर चली गई दानादीन को घेर से बुलाने,—खाना खाने के लिए।

रमधनिया ने खाना बनाया,—सोचती जाती थी कि क्या उसे खाना खा लेना चाहिए? उसका पति चन्दू कहाँ और किस दशा में था उसे इस बात की चिन्ता थी,—परन्तु वह उसके लिए कुछ नहीं कर सकती थी। चन्दू की हृदयहीनता ने रमधनिया के जीवन को विशृंखल कर दिया था,—पगली-सी बना दिया था उसे। उसकी एक मात्र देन मुनिया थी उसके पास और मुनिया का इस समय रमधनिया को बड़ा सहारा था। मुनिया जब कुछ कहती थी तो उसका एक-एक शब्द *रमधनिया के हृदय के हजार-हजार कष्टों को खींचकर बाहर ले आता* था, शीतलता प्रदान करता था, उसके हृदय की गम्भीर जलन को खो देता था, उसकी उदासीनता को और उसके जीवन के शान्त प्रवाह को एक उत्साह और उमंग प्रदान करता था। उसे मुनिया के शब्द सुन कर ऐसा लगने लगता था कि वह अभी जिन्दा है, उसकी नसों में रक्त बहता है, उसके कान कुछ सुनते हैं, उसके नेत्र कुछ देखते हैं और उसके शरीर में अभी जीवन के आसार बाकी हैं। जब रमधनिया मुनिया को प्यार से अंक में भरती थी तो उसे अपने जीवन की नीरसता का आभास मिलने लगता था, रमधनिया के जीवन के शान्त सरोवर में मुनिया का जीवन एक उभरकर आने वाली मीठी-मीठी तरंग थी, उल्लास था, जो गमगीन-से-गमगीन वातावरण में भी एक तरंग की

हो गया था। कुछ सोच-विचार वह कर नहीं पाता था। चन्दू ने दातादीन के जीवन का क्रम ही बदल दिया। वह घर आया तो भुनिया नित्य की भाँति आकर पैरों से लिपट गई और उसका उदास चेहरा देखकर बोली,—"बाबा ! तुम लुँआछे से न लहा कलो।"

"नहीं बेटी ? मैं रुआँसा भला क्यों रहूँगा ?" इतना कहकर दातादीन ने भुनिया को गोद में उठा लिया और उसे लिए-लिए ही चन्दू की माँ के पास गया। वह कोठे में पड़ी आप-ही-आप सिसक रही थी। दातादीन ने उसे भी समझाया।

खाना बन गया। मुनिया परसकर ले आई ! भुनिया ने थाली के पास बैठकर बाबा को खाना खिलाया,—दातादीन को खाना खा लेना पड़ा,—उसने समझ लिया चन्दू मर गया,—उसके लिए मर गया,—उसके परिवार के लिए मर गया।

दो दिन पश्चात् पता चला कि चन्दू को पुलिस ने कहीं से खोज निकाला। रमला और चन्दू दोनों साथ-साथ किसी देशी शराब के ठेके पर शराब खरीदते पकड़े गये। कन्नू को पुलिस पहले पकड़ चुकी थी।

इन तीनों के पकड़े जाने से गाँव के लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी कहते थे,—'जो जैसा करता है, वैसा ही भरता है। जैसा बोता है, वैसा ही काटता है।' अच्छा हुआ तीनों पाजी पकड़ लिए गये। गाँव-भर के नाक में दम था। आज किसी का खेत काट लिया, तो कल किसी के भुस का बूँगा तोड़ लिया, किसी के उपलों के बिटौड़े में से चार हेल उपले निकाल लिए तो किसी का रात को छोटा-मोटा पेड़ ही काट लाये, किसी के घर में कूमल फोड़ लिया तो किसी के जानवरों मे मे ही एक-दो को नौ-दो-ग्यारह कर दिया। पुलिस इन्हें ले गई तो गाँव तो सुख की नींद सोया,—चैन की वंसरी बजाई, गाँव ने।

साहूकार के बेटे ने दातादीन का नाक में दम किया हुआ था। वह अपने रुपये के लिए तकाजे-पर-तकाजा कर रहा था और दातादीन के पास रुपये का कोई प्रबन्ध नहीं था। इस डाके के बाद से तो साहूकार का बेटा और भी खूँखार हो गया था, मिटा देना चाहता था वह दातादीन को। व्यर्थ के लिए किसी की धमकियाँ खाना दातादीन को भी बर्दाश्त नहीं था। उसने आज स्पष्ट कर दिया,—"तुझे जो करना है सो कर, व्यर्थ की धमकी देना फिजूल है। तेरे बाप से दोनों का सम्बन्ध था, इसीलिए मैंने बोलना ठीक नहीं समझा। लेकिन अब तू तुला ही बैठा है मुझे बर्बाद करने पर, तो कर। मैं तुझे रोक ही भला किस तरह सकता हूँ।"

साहूकार का बेटा उधारा-सा रह गया। जो कुछ भी धमकी वह दे रहा था—इसीलिए दे रहा था कि उसकी दाब में आकर दातादीन रुपया उगल देगा। परन्तु दातादीन के पास जब कुछ हो, तभी तो! उसके पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी जहर खाने के लिए। "मेरे हाथ-पैर थक चुके। धन्धू आवारा निकल गया। पैदा कम हो गई। जमीन कोई यों ही सोना थोड़े ही उगलती है।" गम्भीरतापूर्वक दातादीन बोला।

"तो मेरा रुपया मारा गया, इसका मतलब यह हुआ!" साहूकार के बेटे ने पूछा। आश्चर्य से उसके नेत्रों के डोरे खिंच गये,—आसमान से गिर गये।

"किसी का रुपया मार लेने की नीयत मैं नहीं रखता। कौड़ी-कौड़ी और पाई-पाई चुकता करना चाहता हूँ। लेकिन मेरे पास देने के लिए कुछ हो भी तो! मेरी हड्डियों में यदि अपना रुपया निकाल सको तो निकाल लो!" दातादीन बोला। दातादीन इस समय साहूकार के बेटे को बहुत घृणा की दृष्टि से देख रहा था।

"अपने बैल बेच डालो, भैंस बेच डालो,—हड्डियों से निकाल लेने की बात क्यों कहते हो!" त्योरी चढ़ाकर साहूकार के बेटे ने कहा।

बाप पर मेरे क्या-क्या एहसानात हैं, तू क्या जाने !" कड़ककर दाता-दीन ने कहा और क्रोध से उसका सारा शरीर थर-थर काँपने लगा, मुँह तमतमा उठा।

"बाप पर होंगे एहसानात, मुझ पर किसी का कोई एहसान नहीं है। मैं पूछ रहा हूँ कि तुम्हारे पास मेरा रुपया देने की क्या सबील है ? देना चाहते हो या नहीं ! साफ-साफ कहिए। मैं साफ जवाब चाहता हूँ।" इतना कहकर साहूकार का बेटा अपने चिकन के कुरते की बाँहों को धीरे-धीरे ऊपर को चुनने लगा।

"तुम्हारा रुपया पाई-पाई देना चाहता हूँ। लेकिन देने की कोई सबील इस समय मेरे पास नहीं है।" सरलतापूर्वक दातादीन ने कहा। उसके कथन में सचाई थी, फरेब नहीं। साहूकार का रुपया मारने की उसकी नीयत नहीं थी। इतना कड़ा जवाब भी वह इसलिए दे रहा था कि उसके पास रुपया नहीं था और उसे रुपया देने पर मजबूर किया जा रहा था। वह दे कहाँ से !

यदि साहूकार का बेटा असल में सूद जमा करके कागज बदलवाने की बात करता तो दातादीन को जरा भी इन्कार न होता। दातादान से हल-बैल बेचने की बात कहकर तो मानों साहूकार ने उसके सिर की पगड़ी ही उतार ली,—लेकिन वह चुप रहा। उसे बोलने लायक नहीं छोड़ा उसके चन्दू ने।

"तब मैं जो चाहूँ, सो करूँ ?" साहूकार का बेटा सरलतापूर्वक व्यंग से बोला।

"मैं रोक किस तरह सकता हूँ तुझे ?" दातादीन ने उत्तर दिया। "मैं नहीं चाहता कि मेरे और तेरे खान्दान के इतने पुराने सम्बन्ध इस तरह⋯ ⋯।"

"अजी खान्दान-वान्दान की बात छोड़ो !" साहूकार का बेटा

दातादीन की बात बीच में ही काटकर एक अजीब ढङ्ग से मुसकराते हुए बोला,—"खान्दान-वान्दान किसने जाने !"

दातादीन मूर्ख नहीं था। साहूकार के बेटे का इस तरह उसकी बात को बीच में काटकर मुसकराने का क्या अर्थ था, यह वह खूब जानता था, परन्तु बोला एक शब्द भी नहीं, खून का घूंट पीकर रह गया। खान्दान के जिस नाम पर उसे अभिमान था और जिसके लिए वह आज तक मरा व मिटा था, उसीको पन्नू ने खाक में मिला दिया। लाख की आबरू खाक करदी। वरना क्या मजाल थी इस साहूकार के बेटे की कि जो एक शब्द भी कह पाता। इसकी कलई दातादीन से छुपी नहीं थी। इसीकी माँ थी जो एक जोगी के साथ शहर को भाग गई थी और छँ महीने उसके पास रही थी। फिर इसी दातादीन की भुजाओं के बल पर साहूकार अपनी पत्नी को प्राप्त करने के लिए शहर को रवाना हुआ था और आखिर यही दातादीन उसे पाँच बदमाशों के बीच से निकालकर लाया था। कहते हैं, वही वहाँ से जो माल-असबाब लाई थी, उसीकी बदौलत वह साहूकार और यह साहूकार का बेटा बन गया। लेकिन अब उन बीती हुई बातों को फिजूल स्मृतियों से क्या लाभ ? और यदि उनका कच्चा चिट्ठा खोल-खोलकर बखान भी किया जाता तो उससे क्या बनता था। इस समय तो दातादीन कर्जदार था और साहूकार के बेटे को अपना रुपया वसूल करना था।

साहूकार का बेटा चला गया। दातादीन कोई सही जवाब न दे सका। वह दिल से साहूकार का रुपया चुकता करना चाहता था, परन्तु कुछ सबील नहीं थी उसके पास। इसी परेशानी में घर पहुँचा तो मुनिया घर के आँगन में खेलती फिर रही थी। मस्ती में झूम-झूमकर नाच रही थी और गुनगुना रही थी न जाने क्या-क्या। एक तरफ उसके कई मिट्टी के खिलौने पड़े थे और उन्हींके पास कुल्हियाँ और दीवलों का ढेर लगा था।

दीवाली आई थी। दातादीन ने दीवले देखकर समझा, दीवाली

आई। रमधनिया ने घर लीप-पोतकर साफ-सुथरा कर दिया था। दुवारी और कोठा सब लीपे थे। सास की गालियाँ और झाड़-फटकारें सुनकर भी लीपे-पोते थे। उसका लाल, चन्दू जेल मे बन्द था और यहाँ दिवाली मनाई जा रही थी,—"डायन कहीं की!" बस इतना ही कहकर वह चुप रह जाती थी। रमधनिया ने अब सास की गालियों और फटकारों पर बिलकुल ध्यान देना बन्द कर दिया था।

"आज दीवाली है", भुनिया ने दातादीन के पैरों से लिपटकर कहा। "बाबा! माँ कहती है बरस दिन का त्यौहार है। बाबा खील-बताशे लायेंगे। लाओगे न बाबा?"

"क्यों नहीं लाऊँगा अपनी बिटिया के लिए।" कहकर दातादीन ने भुनिया को गोद में उठा लिया। वह भूल गया साहूकार के बेटे के झमेले को, विन्ताओं को। क्या उसने कहा था और क्या उसने,—उसे कुछ याद न रहा। भुनिया दातादीन की आँखों का तारा थी इस समय। वह भुनिया को गोद में लेकर अपना सब दुःख भूल गया,—खो गया एक विचित्र-सी विचारधारा में। इस समय दुःखी नहीं था वह। उसकी अनमोल बच्ची उसकी गोद में थी, उसकी सती-साध्वी बहू सामने चूल्हे पर बैठी खाना बना रही थी,—उसके परिवार में सुख फैला हुआ था, वही सुख जो उसने अपने जीवन-भर की कमाई और बाप-दादों की सम्पत्ति को न्यौछावर करके प्राप्त किया था,—खरीदा था भगवान् से। परन्तु चन्दू की माँ को दशा देखकर दातादीन कभी-कभी रो पड़ता था। उसकी फटकारें उसे भी सुननी पड़ती थीं। दातादीन उन्हें प्यार से सुनता और सहानुभूति से भुला देता था। बहू को भी समझा देता कि कभी चन्दू की माँ को कोई कटु शब्द न कहे; और रमधनिया,—वह तो मानो देवी थी इस मामले में,—सहन करने की देवी। उसे रहम आता था अपनी सास की दशा पर। रमधनिया उस माँ के हृदय की पीड़ा को महसूस करने में नासमझ नहीं थी जिसका इकलौता लाल, कलेजे का टुकड़ा, पुलिस ने सीखचों के पीछे बन्द कर दिया था—माँ की नजरों से दूर,

माँ की गोदी से दूर। माँ के हृदय की इज्जत थी रमधनिया की नजरों में, रमधनिया के दिल में।

दातादीन को रगड़ दिया पैसे की समस्या ने,—जीवन को जीवन न समझ पाया, जीवन एक समस्या ही बना रहा उसके लिए। आज दातादीन ने प्यार से झुनिया को चुमकराते हुए दृढ़ संकल्प किया कि' अब अपने शेष दिन जीवन को जीवन मानकर ही काटेगा, जीवन को पैसे की समस्या मानकर नहीं। परिस्थितियों पर उसका अधिकार नहीं, मेहनत से उसने कभी जी नहीं चुराया,—फिर इसके पश्चात् भगवान् जैसे भी उसे रखेगा,—वह रहेगा। भगवान् को अब अपमानित ही करके रखना है उसे तो इसमें उसका चारा ही क्या ? यदि भगवान् को साहूकार की नजरों में उसे मादिहन्द और बेईमान बनाकर ही रखना है तो दातादीन रहेगा—मरेगा नहीं। जिसके जी में जैसा आये, कहे, परन्तु दातादीन ने अपने जीवन में कभी किसी का बुरा नहीं चीता,—बस उसके लिए यही उसके जीवन का सन्तोष था। लेकिन अब भी वह यूँ ही अपने खेतों को, हाथ से नहीं जाने देगा। उनकी मिट्टी में उसका पसीना मिला था,—जीवन-भर मिलता रहा था।

दातादीन झुनिया को गोद में लेकर बाहर निकल गया। बनिये की दूकान पर जाकर उसे खील-बताशे दिलवाये और उसकी पूरी गोद भर कर कहा,—"बस बिट्टो रानी ! या और भी लोगी ?"

"और बस।" झुनिया ने कहा।

"कब भी ?" मुसकराकर दातादीन ने अपनी लम्बी-लम्बी मूँछें प्यार से झुनिया के मुँह पर बिछाते हुए कहा।

"माँ ने कहा है बाबा, दिवाली दो दिन की है।" झुनिया बोली।

"हाँ बेटी, दो दिन की ही होती है दिवाली। आज छोटी दिवाली है, कल बड़ी होगी।"

फिर दातादीन झुनिया को घर छोड़कर खेत की ओर चला गया। कल्लू चमार ने बछड़े के गले में घण्टियाँ बाँध रखी थीं। गोधन की तैयारी

थी। इस पर आज ही दातादीन की दृष्टि गई। दातादीन को आज अपने जीवन में एक नई स्फूर्ति दिखलाई दी। उसने अपनी समस्याओं से ऊपर उभरकर जीवन पर दृष्टि डाली। जीवन में अब भी उसे जान दिखलाई दी। हँसने, बोलने, मुसकराने, प्रफुल्लित होने और रीझने के अवसर उसे मिले। जिन परिस्थितियों पर उसका वश नहीं, उनकी गर्मी में अपने जीवन-रस को जला-जलाकर सुखा डालना दातादीन ने नादानी समझी।

दातादीन मुसकराकर कल्लू से बोला,—"बहुत अच्छी पठियाँ बनाई हैं कल्लू ! तुम्हारा बछड़ा बहुत सुन्दर जँच रहा है। कहाँ से पाए थे यह सुन्दर-सुन्दर मोर के पँच ?"

'बैलों के लिए भी बनाई हैं चौधरीजी !' कल्लू चमार ने अपनी करामात पर दातादीन की प्रशंसा सुनकर प्रफुल्लित होते हुए कहा। उसका मुरझाया हुआ मन खिल उठा। कल्लू को भी आज प्राणहीन दातादीन प्राणवान दिखलाई दिया। उसने भी अपने जीवन में एक नई ताजगी प्राप्त की।

कल्लू ने आज दातादीन से बहुत-सी बातें कीं—कितने ही दिन की दबी हुई बातें,—कितने ही दिन की रुकी हुई बातें। वह कहता ही गया बहुत-सी बातें और दातादीन भी मुसकराकर हाँ-ना करता रहा। कल्लू ने कुछ गाँव के आदमियों के खिलाफ कहा, कुछ चन्दू की हमदर्दी में कहा, कुछ पुलिस के खिलाफ कहा, कुछ साहूकार के बेटे के बारे में कहा,—मतलब यह है कि जिन विचारों में दातादीन डूबा रहता था उसने पाया कि कल्लू का मस्तिष्क भी पिछले दिनों उन्हीं पर अपनी अक्ल के अनुसार सोचता रहा था, विचारता रहा था, आज उसने सब बातें कहीं। दातादीन ने महसूस किया कि उसने अपनी समस्याओं में फँसकर न केवल अपना ही जीवन एक समस्याओं द्वारा संचालित यन्त्र बना लिया था वरन् कल्लू की भी उसने यही दशा करदी थी। कितने दिन पश्चात् कल्लू आज अपने चेहरे पर प्रसन्नता ला पाया !

दातादीन ने घण्टी से खोल कर दो रुपये कल्लू चमार को दीवाली का त्यौहार मनाने के लिए दिए और फिर अपने बैलों के पास चला गया। दातादीन ने उनकी पीठ पर प्यार से हाथ फेरा। बछड़े की टाँट पर टिटकारी देकर देखो। गैया की थूथड़ी को हाथ में लेकर प्यार से उसके साथ अपना मुँह टिकाले हुए नेत्रों से दो आँसू बहा दिये,—बह गये वह अपने आप, बिना प्रयास ही।

फिर दातादीन अपने घेर के अहाते में घूमने लगा। आज रात दीवाली की थी। दातादीन के घर दीए जले, रोशनी हुई, खील-बताशे खाये गए, भुनिया प्रसन्न होकर नाचती हुई आकर दातादीन के पैरों से लिपट गई,—दुनिया यूँही चलेगी,—चलती आएगी और दातादीन भी इस दुनिया में रोकर नहीं चलेगा।

: ६ :

चन्दू ने रमला, और कन्नू के साथ साहूकार के घर पड़ने वाली डकैती में भाग लिया,—अदालत ने अपना फैसला दिया। दातादीन ने यहाँ भी अपने पितापन को निभाया। बछड़ा बेच डाला, भैंस बेच डाली और अपना भुस का बौंगा तथा दो बिटौड़े बेचकर वकील खड़ा कर ही दिया अदालत में। पैरवी के लिए मुनिया के बाप के साथ अदालत भी गया, लेकिन चन्दू को न छुड़ा सका।

कैद बुल गई दस साल की,—सख्त कैद।

मन मैला लिए घर लौटा। भगवान् की गति के सामने लाचार था। भाग्य को ही आखिर दोष देना पड़ा! दातादीन घर में दुवारी के अन्दर आकर टूटी खाट पर माथा पकड़े बैठ गया,—बोला एक शब्द नहीं।

चन्दू की माँ दौड़ी आई अपने लाल का समाचार पाने, परन्तु दातादीन की दशा देखकर उसके घुटने टूट गए, वहीं बैठ गई। कुछ पूछने का साहस न हुआ। केवल 'हाय लाल' ही शब्द उसके मुँह से

निकला। उसे विश्वास न था कि उसका लाड़-चाव का पला चन्दू उसे बुढ़ापे में इस तरह धोखा दे जाएगा। चन्दू की माँ ने एक बार दातादीन के मुख पर तरसते से नेत्रों से देखा और दोनों के अश्रुपूर्ण नेत्र मिलकर एक होगए।

रमघनिया समझ गई, समझने में उसे देर न लगी। वह फूट-फूटकर रो पड़ी। मुनिया बाबा, दादी और माँ तीनों को रोते देख टुलमुलाती-टुलमुलाती घर से बाहर निकल गई।

रमघनिया को मुनिया तथा दातादीन को मुनिया के बाप ने पूर्ण सहृदयता के साथ समझाया। रात को खाने की इच्छा न रहने पर भी खाना खिलाया और कहा,—"दातादीन, कर्मों की गति है बस यहीं आकर तो आदमी को लाचार हो जाना पड़ता है!"

दातादीन जीवन से थक चुका था। मुनिया के बाप के कन्धे पकड़कर सहारा लेते हुए बोला,—"भैया! चन्दू ने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा, हर तरह से मोहताज कर दिया। आज मुझे अपनी चिन्ता नहीं जितनी" कहते-कहते दातादीन की जबान रुक गई। उसकी आँखों के सामने अन्धकार छा गया। शरीर काँपने लगा।

"दातादीन! पत्थर का दिल कर लो, पत्थर का। जो मुसीबत तुम पर पड़ी है उसे दूर आदमी महसूस नहीं कर सकता। अपनी मुसीबत को दुनिया के सामने गाना भी फिजूल है। लोग रोकर सुनते हैं और हँसकर उड़ा देते हैं। अपनी मुट्ठी में है जो मुसीबत तुम पर आई है। तुम समझ लो चन्दू तुम्हारे घर पैदा ही नहीं हुआ।" मुनिया के बाप ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

और दातादीन ने मुनिया के बाप की बात गाँठ बाँध ली। पेड़ में जाकर बैठा तो सहानुभूति का स्वाँग रचकर गाँव के बहुत आदमी आये। सभी ने दातादीन के दुःख में हमदर्दी की हजार बातें कहीं, परन्तु दातादीन ने सब सुनीं, और समेटकर अपने मन में भर लीं,—कहे केवल गिने दो-चार शब्द ही,—"भय्या! भगवान् को जो मंजूर था,

सो हुआ। मैं कर ही क्या सकता था उसकी इच्छा के सामने, बाप का फ़र्ज़ निभाना था,—सो जहाँ तक बन सका वह भी निभा दिया।"

गाँव-भर की स्त्रियाँ घर आईं और सभी ने दिलजमई की ही बातें कीं, परन्तु रमधनिया के दिल पर एक गहरी चोट लगी थी,—एक गहरा आघात था,—एक गहरा सदमा! किसी ने क्या कहा यह वह न सुन सकी,—केवल रोती ही रही आज दिन-भर।

रमधनिया रोई, जी-भरकर रोई, अपने उस पति के लिए रोई जिसके साथ उसने सात फेरे लेने का गुनाह किया था, मार खाई थी, झिड़कियाँ सुनी थीं,—झुनिया अवश्य पैदा हुई परन्तु शायद प्यार वह एक क्षण के लिए भी कभी प्राप्त न कर सकी,—ममता नहीं,—सहानुभूति नहीं।

रमधनिया को चन्दू का रूप मिला उसमें अपनापन लेश-मात्र को भी नहीं था। कभी हँस-खेलकर बातें नहीं हुईं, कभी दो घड़ी बैठकर चन्दू ने रमधनिया के जीवन में नहीं झाँका, उसके मन को नहीं परखा, उसके हृदय में पैदा होने वाली धड़कनों को नहीं सुना, उसके यौवन की चमककर बुझ जाने वाली दीप-शिखा पर दृष्टि नहीं डाली।

चन्दू की माँ ने खाना नहीं खाया। रमधनिया और झुनिया ने लाख मिन्नतें कीं परन्तु उसके हलक से नीचे टुकड़ा उतर ही न सका। आख़िर रमधनिया ने गम्भीर होकर कहा,—"तुम खाना नहीं खाओगी तो मैं भी नहीं खाऊँगी।" और इतना कहकर वह वहाँ से उठ गई।

परन्तु चन्दू की माँ में न जाने कहाँ से धैर्य आया कि वह स्वयं उठकर रमधनिया के पास गई। रमधनिया कोठे में बैठी ज़ार-ज़ार रो रही थी। सास बोली,—"उठ बहू खाना ला मुझे।"

और रमधनिया उठ खड़ी हुई आँखों को पोंछकर। रमधनिया ने थाली परस दी। सास को खाना खिलाकर स्वयं भी खाया।

झुनिया की आयु इस समय पाँच वर्ष की थी। एक नाटक-सा देख रही थी वह—केवल देखने-भर से ही उसका सम्बन्ध था। उसने कि-

मुहल्ले के बच्चों से सुना कि उसके बाप को पुलिस ने कैद करा दी, तो उसने अपनी माँ से जाकर पूछा,—"माँ ! बालक कहते हैं कि बापू को पुलिस ने जेल भेज दिया,—उन्होंने डाका डाला था। यह सच है क्या माँ ?"

रमधनिया रो रही थी। उसने अपने नेत्र पोंछकर भुनिया को गोद में उठा लिया और फिर धीरे से बोली,—"हाँ बिटिया, वे ठीक ही कहते हैं." और यह कहकर रमधनिया फिर फूट-फूटकर रोने लगी। भुनिया कुछ भी न समझ सकी।

भुनिया—"लेकिन माँ, डाका क्यों डाला था बापू ने ?"

रमधनिया के पास इस प्रश्न के समाधान का कोई उत्तर नहीं था, कोई शब्द नहीं थे। वह मौन थी पत्थर की शिला के समान और देख रही थी उस अबोध बालिका के स्वाभाविक सरल मुख पर।

भुनिया ने फिर प्रश्न नहीं किया परन्तु उसका प्रश्न उसके मस्तिष्क में चक्कर काटता रहा। समझ ही न सकी वह। बच्चे कहते थे, डाका बहुत बुरी बात है। बुरे लोग ही डाका डालते हैं। उसने फिर माँ से प्रश्न किया,—"माँ, क्या बापू बुरा आदमी है ?"

रमधनिया ने भुनिया को अंक में भरकर ऊपर उठा लिया और फिर प्यार-भरे स्वर में कहा—'बेटी ! बुरे-भले को तो भगवान् जाने लेकिन हाँ······" वह कह न सकी आगे। मौन होगई। उसके नेत्र पसीज गये और आँसू ढुलक पड़े। उसका गला रुँध गया।

भुनिया—"माँ तू कहती-कहती चुप क्यों हो गई ?" अनजान बालिका ने माँ की ठोड़ी में अपना कोमल हाथ डालते हुए कहा, "एक दिन बापू ने तुझे ही मारा था माँ ! सचमुच ही वह बुरा है।"

भुनिया भूली नहीं थी इस दो वर्ष पुरानी घटना को जब चन्दू ने रमधनिया को घसीट-घसीटकर एक ओर आँगन में पटक दिया था और फिर जूतियाँ-ही-जूतियाँ बजा डाली थीं उसकी चाँद पर। भुनियाँ ने दुवारी के कोने में खड़े रहकर सिसकते-सिसकते वह कांड देखा था और

जो गालियों की बौछार रमभनिया पर हुई थी वह भी उसने सुनी, वह सब अंकित था बालिका के कोमल हृदय पर।

बाबा के साथ एक दिन खेत में जो कहा-सुनी हुई, उस समय भुनिया भी वहाँ मौजूद थी। वह सब भी उसके छोटे से नादान हृदय को रुचिकर नहीं लगा था,—भयभीत दशा में ही सब-कुछ उसके कानों में पड़ा, उसकी आँखों ने देखा और उसके नाजुक मस्तिष्क ने परखा।

भुनिया फिर कुछ नहीं बोली,—या मानो उसने अपनी माँ की दशा को देखकर कुछ कहना ही न चाहा। वह गोद से उतरकर सीधी बाबा के पास खेत में चली गई।

दातादीन खटिया पर चुपचाप अपनी गाढ़े की चादर ओढ़े लेट रहा था। उसके नेत्र पसीजे हुए थे और तमाम शरीर निस्तेज-सा हो गया था। उसका जवान लड़का, जिसके ऊपर उसने आगे और अपने खान्दान के स्वप्नों को संजोया था, बालू का महल बन गया। आज वह बालू का महल ढह-ढह करके धराशायी होगया,—दस वर्ष के लिए जेल की तंग कोठरी में चक्की पीसने के लिए बन्द कर दिया गया दातादीन का चन्दू। दातादीन के जीवन का रास्ता ही बदल गया, सोचने की दिशा ही समाप्त होगई। दातादीन ने अपने पिता के काम को आगे बढ़ाया था, उसे तरक्की दी थी और वह अपना घर बना सका, बैठक बना सका, बिरादरी में खान्दान का नाम ऊँचा कर सका। लेकिन चन्दू ने दातादीन के काम को आगे नहीं बढ़ाया। अब दातादीन के सामने एक अन्धकारमय भविष्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

बेटे के डकैती में जेल चले जाने से दातादीन का सामाजिक मान बहुत नीचे गिर गया। उसके साथ सहानुभूति रखने वालों ने भी उसे अच्छी नज़रों से देखना बन्द कर दिया। उसके बुढ़ापे ने दातादीन को जीवन में पस्त देखकर अपनी चिन्ताओं का जाल उस पर फैलाया और वही दातादीन, जो भीम के समान गाँव मे सीना तानकर निकलता था, अब झुकी गरदन लिए लाठी के सहारे खाँसता हुआ चलता लोगों ने

देखा । अपनी बैठक पर बैठते उसे शर्म आने लगी और वहाँ हर समय हुक्का पीने वालों के लिए तम्बाकू और उपले की आग का प्रबन्ध रखना भी अब उसके वश की बात नहीं रही थी।

साहूकार के बेटे ने दातादीन की टूटती दशा देखकर अपनी रकम खतरे में समझी । फिर चन्दू ने उसके घर डकैती डाली थी, यह भी उसके दिल पर एक ताजा घाव था।

जब दोनों आमने-सामने होते तो साहूकार का बेटा ऊपर से हँसता हुआ दिल में जलन लिए कहता,—"चौधरी साहब ! किसी की रकम लेकर इस तरह डकार जाना कुछ अच्छी बात नहीं। पिताजी आपको गाँव का सबसे ईमानदार आदमी समझते थे।"

इस पर दातादीन दबी जबान से कहता,—"ठीक कहते हो बेटा ! साहूकार मुझे ईमानदार समझता था, यह उसकी मेहरबानी थी,—लेकिन तुम्हारी नजरों में तो मैं–चन्दू का बाप–गाँव की सबसे नादिहन्द आसामी हूँ। इसलिए तुमने दावा भी कर दिया है अदालत में," और इतना कहकर दातादीन ने घिघियाई-सी दृष्टि से साहूकार के बेटे के मुख पर देखा।

साहूकार का बेटा—"लेकिन दाऊ ! मियाद जो जा रही थी कागज की ! करता भी आखिर क्या ?" मुसकराते हुए बोला।

दातादीन,—"अच्छा किया बेटा !" कहकर लम्बी साँस लेते हुए चुप हो गया। उसकी गरदन झुक गई और वह सीधा अपने घेर की ओर चला गया।

आज उसे लगा कि मानो यह घेर उसका नहीं था, इसमें बँधे बैल उसके नहीं थे और फिर सन्ध्या को जब वह जंगल की तरफ गया तो उसे लगा कि यह लहलहाते हुए दो खेत जिनमें जीवन-भर दातादीन अपनी कड़ी मेहनत का पसीना बहाता रहा था, जिनकी मिट्टी के अणु-अणु के साथ उसने अपने हाथ से खाद को रगड़कर उसे जरखेज बनाया था, अब उसके नहीं थे। दातादीन खेत के किनारे खड़ा होकर

रो पड़ा। सन्ध्या की स्वर्णिम किरणें सरसों के पीले फूलों से खिले खेतों पर बिखरकर रात्रि के अन्धकार में विलीन होती चली गईं,—काला पड़ गया सारा संसार—अन्धकारपूर्ण, निराशापूर्ण। दातादीन की दुनिया बदल गई। साहूकार के पैसे ने दातादीन के मौजूदा जीवन को खत्म कर दिया। दातादीन का सामाजिक स्तर बदल दिया। वह चाहे दो खेत का मालिक था, लेकिन जमींदार था, एक खानदानी इज्जतदार आदमी था। अपनी जमीन पर खेती करता था। किसी का काश्तकार नहीं था,—अब उसे काश्तकार बनना होगा—एक मजदूर बनना होगा। मजदूर······आज उसकी आँखों के सामने कल्लू चमार आकर खड़ा हो गया,—दातादीन का मजदूर। क्या दातादीन को भी कल्लू की तरह ही किसी की नौकरी करनी होगी ?

दातादीन के खेत वाकई उसके हाथों से निकल गये; उसके बैल बिक गये। उसके हल-मढ़ौये साहूकार ने नीलाम करा दिये। घर और उसकी बैठक भी उसे छोड़नी पड़ी। चन्दू की माँ चीखें मार-मारकर साहूकार और उसके खानदान को कोस रही थी, परन्तु रमधनिया और पत्थर की पुतलिका के समान खड़ी थी। भुनिया उसके लहँगे से लिपटी यह सब दृश्य देख रही थी। रमधनिया ने एक भी अक्षर किसी के लिए उच्चारण नहीं किया।

साहूकार के बेटे ने रमधनिया की चक्की, रमधनिया का चर्खा, कठौती, तवा, पतीली, चीमटा, थाली और दो-चार टोकरियों का घर-गृहस्थी का सामान निकालकर घर से बाहर पटकवा दिया। एक गोल माटे की और चार मटके तथा मटकियाँ भी बाहर गली में निकालकर डाल दीं। दातादीन का खुरपा और कसला, जो दुवारी के कोने में रखे हुए थे, वह दातादीन ने आखरी दम स्वयं निकालकर उसी गली में पड़े सामान के पास रख लिये। ये दोनों ही दातादीन के मजबूत हाथों के वह सहारे थे जिनके दम पर दातादीन ने एक दिन सफलता का मुख देखा था, उज्ज्वल भविष्य की रूप-रेखा बनाई थी और अपने पूर्वजों

से आगे बढ़कर समाज में एक नया और ऊँचा स्थान बनाने का प्रयास किया था। अपने उन औजारों को वह खुद उठाकर बाहर ले गया।

यह दफ्तर अदालत के अमीन ने दिलाया था। अमीन साहब के बैठने के लिए साहूकार के बेटे ने पहले से ही एक मूढ़ा मँगाकर दाता-दीन की दुवारी के बाहर डलवा दिया था। पान-सिगरेट की खातिर लगातार चल रही थी। साहूकार के बेटे ने, जब सब सामान घर से निकल गया और फर्द पर अमीन ने दातादीन के अँगूठे का निशान भी ले लिया तो एक लम्बी साँस खींचकर कहा, "चौधरी! देखा कुछ, किसी का रुपया यों ही हजम कर लेना मामूली बात नहीं होती।" और फिर अमीन की तरफ मुखातिब होकर कृतज्ञता के स्वर में बोला, —"अमीन साहब! मैं आपका कितना अहसानमन्द हूँ यह कह नहीं सकता। मैं तो अपनी समझ से इस रकम को डूबी ही समझ बैठा था। दावा किया अवश्य था परन्तु यों ही आसमान में ढेला मार दिया था।"

"लेकिन अब तो फल झड़ पड़ा। पौ बारह नहीं कहोगे इसे।" अमीन साहब ने मुसकराते हुए पान की गिलौरी मुँह में रखा, सिगरेट का कश खींचकर कहा।

"सब आपकी मेहरबानी है यह," साहूकार का बेटा बोला।

दातादीन ने यह सब अपने कानों से सुना। सौ-सौ रुपए के दो नीले नोट भी अमीन साहब की जेब में सरकते दातादीन ने देखे, परन्तु वह कर ही क्या सकता था। आज का यह दृश्य गाँव-भर ने देखा। अनेक प्रकार की बातें कहीं। कुछ ने कहा,—"बुरे काम का फल बुरा ही होता है भाई!" दूसरों ने कहा, साहूकार के बेटे से टक्कर लेने चला था। रगड़कर रख दिया, एक ही बार में। बड़ों से झगड़ना बुरी बात है भाई!" कुछ ने कहा, "भाई कुछ भी सही, किया बुरा ही साहूकार के बेटे ने। हो सकता है चन्दू ने डकैती में भाग लिया हो लेकिन वह भी तो दातादीन ही था जो लाठियों की छाया में साहूकार को बाहर से छुड़ाकर लाया था।" दूसरों ने कहा, "कुछ भी सही लेकिन

प्रधानक इस तरह किसी की गृहस्थी को घर से बाहर निकालकर खड़ा कर देना चाल-चक्वेदार आदमी को शोभा नहीं देता। इतनी थोड़ी-सी रकम के पीछे किसी को बेघर का कर देना इन्सानियत की बात नहीं। कहीं भागा तो नहीं जा रहा था बेचारा दातादीन!"

मतलब यह कि सभी पक्षों के लोगों ने अपने-अपने विचार प्रकट किए, परन्तु *सहानुभूति और वास्तविक सहायता के लिए केवल मुनिया* और मुनिया का बाप ही सामने आए। मुनिया के बाप ने अपनी दुवारी दातादीन के परिवार के लिए खाली करदी। दातादीन अपना सामान लेकर उसमें चला गया; आज वह रो भी न सका। उसके नेत्रों के आँसू आँखों के अन्दर-ही-अन्दर जम गये। अब उसकी इन चार प्राणियों की *गृहस्थी का क्या होगा, यह कुछ उसकी समझ में न आया।* उसका दिमाग चकरा रहा था, उसका दिल बुरी तरह धड़क रहा था और आँखों के सामने अन्धकार था, घोर अन्धकार।

रमधनिया रात-भर न सो सकी। एक गम्भीर चिन्ता थी उसे। यों सोचना तो उसने अपने और अपने भविष्य पर उसी दिन से आरम्भ कर दिया था जिस दिन चन्दू दस वर्ष को जेल चला गया था। परन्तु आज दातादीन का सब-कुछ साहूकार के बेटे की सम्पत्ति बन जाने पर तो उसने देखा कि उसे केवल उसकी मेहनत और मजदूरी का ही सहारा था।

रमधनिया ने कलेजा भारी नहीं किया। साँझ को ही दुवारी में अपना मिट्टी का चूल्हा रखकर उसने *नमक की मोटी-मोटी मिस्सी* रोटियाँ बनाईं और अपनी सास और दातादीन को प्याज के साथ खाना खिलाया। रमधनिया का कहना दोनों में से कोई भी न टाल सका, मुनिया संध्या को ही मुनिया के साथ खाना खाकर सोगई थी।

रात्रि में रमधनिया ने घूँघट की ओट करके दातादीन से पूछा,—"*क्या हमारा इस गाँव में कोई और भी जमीन का टुकड़ा है जहाँ हम* अपना घर बना सकें?"

दातादीन ने उत्तर दिया,—"है तो जरूर बहू ! लेकिन घर बनाना आसान नहीं," और इतना कहकर वह चुप हो गया ।

रमधनिया सुबह होते ही वह जगह देखने गई। रमधनिया आज पहली बार गाँव में निकली थी। दातादीन गरीब अवश्य था परन्तु उसके घर की बहू-बेटियाँ इस तरह गाँव में नहीं निकलती थीं। पर आज तो दातादीन का कोई घर नहीं था, फिर घर की मर्यादा ही कहाँ बची ! रमधनिया उसके साथ गाँव की गली में चल रही थी और दातादीन पत्थर का कलेजा लिए आगे बढ़ रहा था।

दातादीन ने रमधनिया को उस जमीन के टुकड़े पर लेजाकर खड़ा कर दिया जो उसकी आखिरी सम्पत्ति थी इस गाँव में। बरसाती पानी के इकट्ठा होने का एक गन्दा जोहड़ था गाँव से बाहर, जिसके किनारे अन्धेरे-उजाले गाँव की स्त्रियाँ आकर टट्टी फिर जाती थी। जोहड़ के किनारे सुबह-शाम हर समय सूअर-सूअरी और उनके बच्चे कीचड़ में लेट लगाते थे और अपनी थूथड़ी भड़क-भड़ककर मिट्टी इधर-उधर छितरा देते थे। रात को मेंढकों की टर्र-टर्र और मच्छरों की भिन-भिन भी वहाँ कम नहीं होती थी। एक लम्बी पूँछ वाला मच्छर, जिसे गाँव के लोग डाँस कहकर पुकारते थे, वहाँ बहुत होता था।

रमधनिया कुछ देर उस जमीन के टुकड़े पर खड़ी रही और फिर साहस के साथ बोली,—"बहुत अच्छा रहेगा यहाँ हमारा घर; गाँव से बाहर, एक तरफ !"

"लेकिन बनेगा कैसे बहू !" दातादीन ने आकाश की ओर नेत्र फैला कर कहा।

जमीन के इस टुकड़े को दूसरे दिन दातादीन ने खुद अपने कसले से इकसार किया और रमधनिया ने खुरपे और झाड़ू से साफ कर दिया। फिर चिकनी जोहड़ की मिट्टी में थोड़ा-सा भूसा और गोबर मिलाकर उसे लीपा और उसी पर एक फूस की झोपड़ी डाल दी।

दो दिन दातादीन का परिवार मुनिया की दुवारी में ही रहा। तीसरे दिन जोहड़ के किनारे वाली झोंपड़ी में चला गया। मुनिया और मुनिया के बाप रामू दोनों के प्रति उनके मन में महान् श्रद्धा की भावना थी।

आज रात को झोंपड़ी में बिछी पुआल पर रमघनिया जब मुनिया को साथ लेकर लेटी तो उसे लगा कि मानो उसका सब-कुछ उसके पास ही था। उसके कलेजे की टुकड़ी उसके पास सो रही थी। लेकिन चन्दू की माँ का कलेजा शान्त नहीं था। दातादीन कुनमुना रहा था। उसकी आँखों में नींद नहीं थी। झोंपड़ी के बाहर चटाई पर टाट बिछाये दातादीन लेटा था। उसकी दृष्टि आकाश में झिलमिलाते हुए तारों में एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे पर तैरती हुई न जाने कहाँ और कब विलीन हो गई। आज कुछ सोचने का विचार करते हुए भी वह कुछ न सोच सका। भगवान् की गोद में फेंक दिया। दातादीन ने अन्त में अपने को, एक निस्सहाय, निर्धन और निर्बल व्यक्ति के रूप में।

चन्दू की माँ इस समय भी बड़बड़ा रही थी। साहूकार के वंश के सर्वनाश का मंत्र ही इस समय इस असहाय प्राणी की जबान पर था। उसकी हर कराह में चन्दू का प्यार और साहूकार के बेटे के लिए शाप उभर-उभरकर आता था। वह रो रही थी, उसका हृदय रो रहा था। चन्दू ने अपनी माँ की कोख को लजाया,—यह लज्जा उनके लिए कम नहीं थी। उसे बहुत क्रोध था चन्दू पर, परन्तु चन्दू के जेल चले जाने ने उसका दिल तोड दिया था। यह टूटे दिल की आहें थीं जो इस समय उसकी जबान से अनायास ही निकल जाती थीं।

रमघनिया ने अपनी सास का ध्यान बदलने के लिए झुनिया को [illegible] उसके पास सुलाते हुए कहा,—"माँजी ! किसी को गाली देकर [illegible] . . . वाला है ? यदि भगवान् को मंजूर न होता तो [illegible] वाली बात थी !"

सास की आँखें आँसुओं से भरी थीं। उसने प्यार से भुनिया को छाती से चिपका लिया और रमधनिया के मुँह पर देखकर नेत्र बन्द कर लिए।

रमधनिया ने देखा कि उसकी सास के बन्द नेत्रों के कोनों से आँसू निकलकर नीचे ढुलक पड़े थे, उसके सूखे गालों पर।

: ७ :

"माँ! हमारा घर उस आदमी ने साहूकार को क्यों दिला दिया?" भुनिया ने एक दिन एकान्त में अपनी माँ से पूछा। उस दिन क्या-कुछ हुआ था, वह समझ न पाई अबोध बालिका; परन्तु जो हुआ उसका पूरा चित्र उसके हृदय-पटल पर अंकित था,—उसके जीवन के इतिहास का एक कभी भी न फटने वाला पन्ना बन चुका था वह।

"हमें साहूकार का रुपया देना था बेटी! हम वह रुपया न दे सके। इसीलिए उस अदालत के आदमी ने आकर रुपए लेकर हमारा घर-बार साहूकार के बेटे को दिला दिया।" रमधनिया ने भुनिया को गोद में बिठलाकर समझाते हुए कहा।

"पर साहूकार के बेटे के पास तो अपना बहुत बड़ा घर है माँ, हमारे छोटे से घर का वह क्या करेगा?" भुनिया ने आश्चर्य से पूछा। अदालत क्या चीज है। उसने क्यों भुनिया का मकान उस आदमी को दिला दिया जिसके पास अपना एक अच्छा मकान था,—यह वह न समझ सकी। एक प्रश्न ने भुनिया के बाल-जीवन में प्रवेश किया। कुछ समझ तो वह न सकी परन्तु कुछ सोचती अवश्य रही।

"बेच देगा बेटी! बेचकर अपना रुपया वसूल करेगा," रमधनिया ने सरलतापूर्वक कह दिया।

"ठीक है।" बच्ची ने कहा और वह कुछ न बोली, परन्तु उसका कच्चा कोमल-सा दिल न जाने कैसा हो गया। वह एक स्वप्न-से में डूब गई। इसी समय मुनिया वहाँ आई और उसने प्यार से भुनिया को गोद में उठाकर चूम लिया।

रमधनिया ने उस झोंपड़ी में ही अपनी गृहस्थी का पूरा साजो-सामान लगा लिया। चक्की, चूल्हा, चौका, चर्खा सब इसीमें चलने लगे, उसी तरह जैसे पिछले मकान में चलते थे। रमधनिया अब न केवल घर का काम करती थी वरन् बाहर का काम करने में भी उसे कोई हिचक नहीं थी। झुनिया को अपनी सास के पास छोड़कर अपने बूढ़े ससुर के साथ जंगल जाना भी उसने शुरू कर दिया था।

वह जंगल जाती और घास की पूरी गठिया सिर पर उठा लाती थी। वह दातादीन से अधिक घास खोदती थी और एक ही साँस में मेंड़ पर रखकर गँडासे से पूरा गट्ठा-का-गट्ठा काट डालती थी। सब जानवर बिक गये थे दातादीन के, केवल रह गई थी एक गाय, जो उसे बहुत प्यारी थी। गाय का दूध दूधिये को बेचकर ही आजकल इस गृहस्थी का काम चलता था।

कभी-कभी रमधनिया के पीछे जब झुनिया उनकी झोंपड़ी पर पहुँच जाती थी तो बैठकर ताई से बातें शुरू हो जातीं। ताई का वह लाल-पीला मिजाज अब कुछ ठण्डा हो गया था, कभी-कभी ऐंठ उसमें वही पुरानी भड़क उठती थी, परन्तु रमधनिया,—उसने तो जीवन में दूसरों की ऐंठ पी जाने के लिए ही मानो जन्म लिया था। सास उसकी इस दशा में भी यदि कभी फटकार बतलाती तो वह अपना काम बन्द नहीं करती —उत्तर देने की बात कभी सोची ही नहीं उसने।

"ताई! चन्दू ने ताऊ की बुढ़ापे में कमर तोड़ दी।" झुनिया ने ताई के पास बैठते हुए सहानुभूति के साथ कहा।

चन्दू की मा, चन्दू की बुराई बहुत सुन चुकी थी। और अब उसे सुनकर कुछ झुँझलाहट-सी आने लगी थी। वह चन्दू की बुराई को रमधनिया की कमजोरी मानती थी और अब भी वही था उसकी नजरों में। इसी स्वाभिमान के बल पर तो वह बुढ़िया जी रही थी। उसके घर की बरबादी का कारण उसकी नजर में चन्दू नहीं, रमधनिया थी। अपने चन्दू को वह दोषी ठहराने में असमर्थ थी। उसके

प्यार की कमजोरी यही थी। उसने भड़ककर कहा,—"देख मुनिया बेटी! मैं चन्दू के लिए कुछ नहीं सुनना चाहती। अपनी बहू के लिए भी कुछ नहीं।"

मुनिया चुप हो गई। ताई का ऐसा नपा-तुला जवाब उसने कभी नहीं सुना था। ताई अब जो कुछ भी किसी के विषय में समझती थी, ठीक समझती थी। वह जो कुछ भी समझती थी उसमें अब कोई परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं थी। वह चन्दू के विषय में ही नहीं, किसी के विषय में भी बात नहीं करना चाहती थी।

ताई अब इधर-उधर नहीं जाती थी। अपनी ही झोंपडी में रहकर चर्खे से नेह लगा लिया था। चरखा मानो अब उसकी माला थी और उसके, उसके प्रत्येक चक्कर पर उसकी माला का एक मनका आगे बढ़ जाता था वही चन्दू की माँ का भजन-पूजन था। मन्दिर में जाकर घण्टा-घड़ियाल बजाने का उसके पास समय नहीं था। पूरे चार आदमियों की गृहस्थी का पालन करना था, पेट भरना था। वह सचमुच एक बूढ़ी मजदूरिन बन गई थी जिसने अपनी हड्डियों को अपने कर्तव्य की भट्टी मे झोंक दिया था। चन्दू की माँ एक योगिन थी, तपस्या कर रही थी।

दातादीन की उन्नति और तरक्की का फितूर उसके दिमाग से निकल गया था। दातादीन स्वयं उसे अपने सामने कभी-कभी बुढ़ापे से दबा दीखता था, परन्तु हड्डियाँ उसकी भी पीछे हटने के लिए उद्यत नहीं थी। सुबह-ही-सुबह खुरपा लेकर जंगल जाता था तो रमधनिया के जाने तक दो गट्ठे घास खोदकर तैयार कर लेता था। उसकी भुजाओ और सीने में वह उभार नहीं था, लेकिन हिम्मत अभी ज्यों-की-त्यों बरकरार थी उसमें।

दातादीन दबकर चलता था गाँव में, लेकिन उसका दिल बहुत मजबूत था। कभी-कभी जब वह सोचता था तो बड़ी पते की बात सोचता था और आज तो वह हँस ही पड़ा जिन्दगी पर। मुनिया

सामने से आ गई और वह ज़ोर से खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने प्यार में भरकर मुनिया को गोद में उठा लिया और फिर उसे अपनी दोनों भुजाओं में ऊपर उठाकर बोला,—"बेटी, तेरी शादी करूँगा।" शादी की समस्या उसके मस्तिष्क से टकराई। प्यार के साथ-ही-साथ परेशानी ने दातादीन का गला दबोचना चाहा, परन्तु दातादीन उससे ऊपर उभरकर बोला,—"अपने आखरी दम तक करता ही रहूँगा, जो कुछ कर सकूँगा बेटी! बस यही कह सकता हूँ।"

मुनिया ने दातादीन के शब्दों में से एक शब्द भी सुनने और समझने का प्रयत्न नहीं किया, केवल बाँहों पर झूलने का आनन्द और बाबा का प्यार अपने हृदय में भर लेने में ही वह संलग्न थी। मुनिया दातादीन के गले से लिपट गई। उसने मुँह के पास मुँह लेजाकर पूछा,—"माँ नहीं आई बाबा!"

'अभी आ रही है बेटी! वह अभी-अभी आती है। गैया को पानी पिलाने गई है।"

चन्दू की माँ भी पास को खिसक आई और धीरे से कहा, "मुनिया आई थी।"

"फिर क्या हुआ?" दातादीन ने पूछा।

"बहू की बड़ी तारीफ करती थी।" चन्दू की माँ ने कहा।

"तुम्हें बहू मिली ही तारीफ के काबिल है चन्दू की माँ!" एक गहरा साँस लेकर दातादीन ने कहा। "बाप शराबी हो गया और उसने औलाद पर रुपया ले लिया तो इसमें औलाद का क्या दोष?"

"मैं बुरी कब कहती हूँ..." बस इतना कहकर वह चुप हो गई। दातादीन समझ गया कि उसने अपने हृदय की बात हृदय में ही दबा ली, परन्तु अब दातादीन बहू के विषय में कुछ सुन नहीं सकता था।

दातादीन आदमी के गुणों की परख करना जानता था। सबसे पहले उसने अपनी स्त्री के गुणों को परख की थी। उसे परखा और उस पर घर का भार सौंप दिया। खुद लग गया हल बैल लेकर कहीं

खेती की मेहनत में। जो कमाया वह चन्दू की माँ को दिया और चन्दू की माँ ने दातादीन को घर बनाने और बैठक बनाने के लिए रुपया दिया। घर और बैठक बनाकर दातादीन ने खानदान का नाम रोशन किया। बिरादरी में नाक ऊँची की।

आज उसने चन्दू की बहू को परखा। चन्दू की बहू आज दातादीन के बेटे की बहू नहीं थी, एक मजदूर की साथिन थी वह, उस मजदूर की कि जिसके सिर पर नीला आकाश और नीचे जमीन,—बस और कुछ नहीं था।

लेकिन आज दातादीन और दातादीन के खान्दान पर किसी साहूकार का कर्ज नहीं था। कोई पैसा उसे देना नहीं था किसी का। वह, उसके बेटे की बहू, उसकी बहू, सब मजदूरी करते थे,—और भुनिया अधिकतर अपनी दादी और मुनिया के पास रहती थी, काम सीखती थी, घर बाहर का।

साहूकार का बेटा कुछ दिन तो इस ताक-झाँक में रहा कि कब वह दातादीन के परिवार को भूखा मरते देखे। परन्तु वह दिन उसे देखने को न मिला। चन्दू की माँ ने इस ध्यान के साथ चरखा चलाया और दातादीन ने इस संलग्नता के साथ घास खोदी कि रमधनिया ने घर के खर्चे का ढर्रा बाँध दिया। रमधनिया पीसने-खोटने और खाने-खिलाने के अलावा गाय का पूरा काम, कुट्टी से लेकर न्यार डालने तक, खुद करती थी। जंगल से घास का गट्ठा उठाकर लाना भी उसके लिए नियम बन गया था।

इतना काम करने पर भी रमधनिया के मन में मस्ती नहीं थी, उमंग नहीं थी,—कभी-कभी मुनिया को आँखों के सामने खेलती-कूदती देखती थी तो आँखों में आँसू भर आते थे। भुनिया को देखकर उसे चन्दू की याद आ जाती थी। कभी-कभी अकेली बैठकर वह सोचती,—कैसा विचित्र है यह जीवन। उसके अपने जीवन को ही देखो,—फूल खिलने से पहले ही मुरझाने लगा। आफ़त और मुसीबत के भुनसा देने

वाले सूरज की रचना क्या भगवान् ने इसी फूल के लिए की थी ? रमधनिया का मस्तिष्क निर्णय न कर सका। वह रोती रही बहुत देर तक एकान्त में बैठी।

"रो रही है बहू !" मुनिया ने अकेले में पूछा।

"हाँ, रोना ही आ गया आज ननदजी ! जिन्दगी पहाड़ बन गई। लेकिन सोचती हूँ कि शायद मुनिया के ही सहारे मैं कभी किसी के सात का मुँह देख सकूँ। यदि मुनिया लड़का होती तो........." कहती-कहती चुप हो गई रमधनिया। उसकी नजरों के सामने उसका पति, चन्दू, आकर खड़ा हो गया। वह काँप गई।

कितना हृष्ट-पुष्ट, कितना सुन्दर हर समय मुसकराता हुआ चेहरा,—परन्तु कहाँ ? वह तो आदमी-सा ही नहीं लगता। अब लगता है उसमें। पसीना आ गया रमधनिया को। वह रोती हुई ही बोली,—"ना ननदजी ! ना ! मुझे मेरी मुनिया ही सब कुछ है। कितनी भोली है मेरी मुनिया ?"

मुनिया सचमुच ही बड़ी भोली है बहू ! मेरा तो सारा दिन इसी के सहारे कटता है। कभी-कभी सोचती हूँ कि जब यह ससुराल चली जायगी तो मैं कैसे रहूँगी।" और सचमुच मुनिया का मन भारी-सा हो गया। मुनिया भी मुनिया को अपनी ही बच्ची की तरह बहुत प्यार करती थी।

रमधनिया के हृदय में धँस गये मुनिया के ये शब्द। उनमें कितना अपनापन था वे मुनिया ने उसकी मुनिया के प्यार में कहे थे।

"मुनिया एक खिलौना दे दिया है भगवान् ने ननदजी ! मुसीबत की जिन्दगी में भी हम दोनों प्राणी इस खिलौने से खेलकर थोड़ी देर के लिए अपनी परेशानी भुला लेती हैं।" रमधनिया ने कहा।

"लेकिन बहू ! हम दोनों की भी बड़ी मुसीबत है। हमारे भाग्य में क्या बदा है इसे कौन जाने। भगवान् करे मुनिया को ऐसा वर मिले जो बुढ़ापे में मेरी भी देख-भाल कर सके, लेकिन......" 'लेकिन'

बढ़कर मनिया मौन हो गई। वह एक शब्द भी आगे न बोल सकी। मुनिया के सामने अपने विवाह और उसके पश्चात् ससुराल वालों के व्यवहार का एक नक्शा खिंच गया। मुनिया के पिता ने क्या कुछ नहीं किया मुनिया की शादी में। अपनी औकात से बाहर जाकर सब कुछ किया। घर में जो कुछ था उसके अतिरिक्त कुछ इधर-उधर से पकड़कर भी लगा दिया। परन्तु इतना सब कुछ करने पर भी मुनिया के ससुर और मुनिया के पति को वह देना-लेना पसन्द नहीं आया। मुनिया की सास तो उसे देखकर आग-बबूला ही हो उठी। जो कपड़े-लत्ते मुनिया दान-दहेज में ले गई थी उनकी बुरी तरह छीछालेदर हुई। उन्हें खूब उठा-उठाकर मुँह बना-बना कर इधर-उधर झटका-पटका गया। गाँव की कुछ औरतों को कुछ पसन्द आया भी, पर घर वालों की यह दशा देखकर उन्होंने भी नाक-भौं चढ़ाने में कसर न छोड़ी। फिर मुनिया की सास की बातों में तो सबको बात मिलानी ही थी! अपनी यह कहानी आज पहली बार मुनिया ने रमधनिया को सुनाई।

"बड़ी बहू का मुकाबला तो क्या यह तो मँझली के बराबर भी नहीं लगती, लाई ही क्या है,—हमारे लाल के साथ तो धोखा होगया" मुनिया की चचिया सास ने मुनिया को खूब सुना-सुनाकर ये शब्द उस समय कहे जब पहली बार गाँव की औरतें मुनिया का मुँह देखने आईं।

मुनिया यह शब्द सुनकर सहम गई,—"मैं सहम गई बहू! वह सुनकर और वही हुआ अन्त में मेरे साथ। मुझे वह घर सर्वदा के लिए छोड़ देना पड़ा। अब कभी याद भी नहीं आती मरों की। लेकिन हाँ, कभी-कभी इतना अवश्य सोचती हूँ कि क्या आदमी निकला वह भी। मैं धनाढ्य की लड़की न सही, अधिक पढ़ी-लिखी न सही, फिर भी परख कर तो देखता।" मुनिया की आँखों में आँसू भर आये।

रमधनिया ने मुनिया के हृदय में दबी हुई इस ज्वाला के आज पहली बार दर्शन किये: मुनिया कलेजा थाम कर रह गई, बैठ गई वह

वहीं गाय की खोर पर।

रमधनिया को मुनिया का यह किस्सा अजीब-सा लगा। रमधनिया ससुराल में इसलिए दुतकारी गई कि उसके बाप ने उस पर रुपया लिया था और मुनिया······। उसका बाप सास की गोद बहुत बड़ी नक्दी देकर न भर सका,—उसका यही दोष था। दोनों पिताओं की करनी को भर रही थी,—रमधनिया ने महसूस किया।

"जिन्दगी बरबाद करदी।" रमधनिया ने दुःखी मन से कहा।

"और अपनी भी तो करली बहू! खुद भी बेकार होकर बैठ गये। बापू ने नाकों चना चबा दिये उन्हें। उनकी सब रियासत खाक में मिला दी। कर लेते न दूसरी शादी! रुपयों की न्योली बाँधे-बाँधे फिरे तमाम बिरादरी में। किसी की क्या मजाल थी जो शादी कर देता अपनी बेटी की मेरे रहते। मुझे घमण्ड है अपने बाप पर।"

और मुनिया का मस्तक तथा सीना गर्व से ऊँचा उठ गया। मुनिया को अपने पिता पर गर्व था। रमधनिया पर गर्व करने के लिए वह बाप नहीं था,—परन्तु उसे भी गर्व था अपने ससुर दातादीन पर, अपनी सास पर, जो घास और चर्खे के काम से इस तरह लिपट गये थे कि क्या कोई भक्त अपने भगवान् से लिपट सकता था।

रमधनिया की गाय ब्याई और उसने बछड़े को जन्म दिया रमधनिया ने पास-पड़ोस में गुड़ डालकर पेवसी बाँटी। वह गरीब अवश्य होगई थी परन्तु उसने अपने रीति-रिवाज नहीं बदले थे। लेन-देन उसका गाँव में उसी तरह चलता था। चन्दू की बात दिन-दिन पुरानी होती जा रही थी।

रमधनिया के सामने भी अब जीवन में एक ही काम करने को था और वह था मुनिया की शादी। मुनिया की शादी करने के लिए तीन प्राणी नित्य ही मज़दूरी करते थे, परन्तु खाने और फटा-पुराना कपड़ा पहनने के अतिरिक्त और एक दमड़ी भी न बचा पाते। दातादीन को

तो इसी में आश्चर्य था कि रमधनिया आखिर गृहस्थी का खाना-कपड़ा भी कैसे चला रही थी।

दातादीन के परिवार का चुपचाप बैठकर खाना और दिन गुजारना साहूकार के बेटे की नजर में खटकता था। एक पीड़ा-सी थी उसके मन में—जलन थी बड़ी भारी।

जिसे साहूकार का बेटा मारना चाहे वह कोरी मजदूरी के दम पर *ज़िन्दा रहे, यह वह सहन नहीं कर सकता था। दातादीन के अपने खेत* नहीं थे। वह गाँव के खेतों की मेंड़ों पर से ही घास खोदकर लाता था और उसी को बेचकर तथा गाय को खिलाकर और उसका दूध बेचकर अपने परिवार का काम चलाता था।

सन्ध्या को सिल्क का कुर्ता पहने साहूकार का बेटा भरभेराइदार सुपर फाइन की धोती में घूनट डालता हुआ मुख में गिलौरी दबाये सिगरेट का कश खींचता हुआ दातादीन की झोंपड़ी पर आकर व्यंग-पूर्ण मुस्कान के साथ बोला,—"अब तो खूब ऐश की छन रही है चौधरी साहब !"

दातादीन उसका मतलब न समझा। उसने आश्चर्य से पूछा,—"मैं मतलब नहीं समझा तेरा बेटे !"

"मतलब क्यों समझोगे चौधरी ! जो काम करके बेटा जेल चला गया है वही अब तुमने भी करना शुरू कर दिया है।"

दातादीन सहम गया। उसे पसीना आ गया। वह अपने को न रोक सका। चाहता तो था कि साहूकार के बेटे की टाँट गर्म कर दे, परन्तु *अपनी नाज़ुक हालत देखकर चुप हो गया।* पढ़ा-लिखा न सही, दातादीन की दानिशमन्दी में कोई कसर नहीं थी। दातादीन ने मुस्कराकर ही उत्तर दिया,—"बेटा ! मैं किसी से झगड़ा करना नहीं चाहता। तेरा रुपया था, सो तूने मेरा घरबार सब ले लिया। अब तो मेरे पास कुछ रह नहीं गया है। यह झोंपड़ी जरूर है, सो इसे भी अगर छुड़ाना चाहे तो पहले कहकर छुड़ाना। धोखे का कभी कोई काम तेरे बाप ने नहीं

किया मेरे साथ,—भगवान सद्गति दे उसे।"

साहूकार का बेटा दातादीन का यह उत्तर सुनकर अन्दर-ही-अन्दर जल-भुन गया; परन्तु ऊपर से बोला,—यह भला क्या कह रहे हो चौधरी साहब ! मुझ से तो कभी ख्वाब में भी आपका अहित नहीं हो सकता और पिताजी की क्या बात कहते हो, वह तो देवता थे, देवता। हम उनकी भला क्या बराबरी कर सकते हैं ?"

दातादीन ज्यादा मुँह नहीं लगा उसके। चुपचाप गाय के खूँटे के पास चला गया। लेकिन साहूकार का बेटा आज बहुत देर तक झोंपड़ी के चारों ओर ही मँडराता रहा।

: ८ :

दातादीन बहुत सवेरे ही निकल जाता था घास खोदने। रमधनिया घर का काम-काज खत्म करके जाती थी। चक्की पीसना, पानी भरना, बासी रोटी करना, गाय के न्यार की देख-भाल करना, उसे पानी पिलाना, झुनिया के मुँह-हाथ धोकर कपड़े पहनाना और फिर कहीं उसे फुर्सत मिलती थी जंगल जाने की।

दातादीन ने घास खोदकर ढेर लगा लिया और अब वह इस इन्तजार में था कि रमधनिया आकर उसके गट्ठे बनाकर उठवाये और उसके साथ गाँव को लिवाकर चले। दातादीन की बासी रोटी भी रमधनिया ही लेकर आती थी।

दातादीन घास के पास ही खेत के मेंढ़ पर धूप तापने के लिए बैठ गया। बैठा-बैठा वह सोचने लगा, 'दातादीन ! तू भी कैसा भाग्य लेकर आया ? जीवन में जो भी पासा फेंका वह उलटा ही पड़ा। चन्दू की शादी की उसने, बस यही भूल की। शादी न करता तो यह सच था कि चन्दू कुंवारा रह जाता, तो रह जाता मजा से। उसे तो जेल जाना ही था। कम-से-कम साहूकार का बेटा तो इस तरह खान्दान को और उसकी मिट्टी खराब न करता।'

परन्तु इसी समय उसे सामने से रमधनिया और झुनिया आती दिखाई दी। अब झुनिया रमधनिया के साथ जंगल जाती थी।

दातादीन की दृष्टि उन पर गई तो इसे लगा कि उसने भूल नहीं की। यदि शादी न करता तो रमधनिया उसे कहाँ से मिलती, झुनिया को वह कहाँ पाता,—वह घर, वह पेर, वह खेत, वह सब न्यौछावर थे रमधनिया और झुनिया पर,—दातादीन का हृदय गर्व से फूल उठा।

झुनिया ने गमछे में बँधी दो मिस्सी रोटियाँ, जौ-चने की, दातादीन के हाथों में देते हुए पानी का करवा पास में घास पर रख दिया और सिर से ईंडी उतार कर हाथ में ले ली। झुनिया एक लोटे में छाछ लिए थी, उसने वह भी बाबा के सामने रखते हुए कहा,—"बाप-रे-बाप! बाबा! तुमने तो घास का ढेर लगा लिया। इतनी घास बाबा! तुम इतनी ठण्ड में भला कैसे खोद लेते हो?" इतना कहकर वह बाबा के ही पास घास पर बैठ गई।

दातादीन ने रोटियाँ गमछे से निकाल कर हाथ में ले लीं और छाछ की लुटिया से एक घूँट भरकर कहा, "अब हाथ थक गये बिटिया! नहीं तो घास का ढेर क्या······? यही दातादीन था जो ईख का एक पूरा क्यार-का-क्यार काटकर दम लेता था।"

"क्यार-का-क्यार!" आश्चर्य-चकित होकर झुनिया ने दातादीन की बात सुनी और दातादीन की आँखों के सामने उसके खेत की लहलहाती हुई ईख का नक्शा बन गया। उसके नेत्र बन्द हो गये और हाथ का टुकड़ा हाथ में ही रह गया।

"रोटी खाओ बाबा!" झुनिया ने कहा।

झुनिया बहुत चतुर लड़की थी। दातादीन की दशा देखकर वह समझ गई कि बाबा को अपने खेत याद आ गये। झुनिया अब बारह वर्ष की थी। वह तनिक गम्भीर होकर बोली,—"बाबा तुम्हें खेत याद आ गये। माँ कहती थी कि एक दिन हमारे भी खेत थे। उनमें ईख और सब कुछ पैदा होता था। वह सब साहूकार के बेटे ने ले लिए। उसका

कहीं का हक मार ?"

"हां बेटी !" एक गहरी सांस भरकर दातादीन ने कहा; परन्तु वह बच्ची के मन पर इस बात को नहीं आने देना चाहता था। मुस्कराकर बोला, "लेकिन बेटी क्या हुआ? अभी तो तुम्हारे बूढ़े बाप की हड्डियों में बहुत जान बाकी है। मैं इतनी जान और रखता हूं कि यह गांव क्या आस-पास के इलाके में कोई भी नहीं जोत सकता। तुम्हारी दादी इतना खूब काम कर सकती है कि जितना आस-पास में कोई नहीं कर सकता और तुम्हारी मां !...रमधनिया...मेरी बहू रानी... वह न जाने क्या-क्या कर सकती है। वह वह कर सकती है जो कोई मर्द नहीं कर सकता।" भावना में बहकर दातादीन कहता गया।

रमधनिया पास में बहने वाले नाले के किनारे बैठी दातादीन का खाना खत्म होने की बाट देख रही थी। इसी समय उसे नाले की पटरी पर साहूकार का बेटा आता दिखाई दिया। उसके साथ पटवारी भी था गांव का।

पटवारी और साहूकार का बेटा रमधनिया को बैठी देखकर वहीं ठिठक गये। रमधनिया उठ खड़ी हुई। साहूकार का बेटा तो नाले की पटरी पर ही खड़ा हो गया लेकिन पटवारी सीधा एक मेंड़ से नीचे उतर कर दातादीन के पास तक पहुंच गया।

रमधनिया का दिल धक्-धक् करने लगा। वह डर गई कि आज अवश्य कोई काण्ड होने वाला था। वह भी धीरे-धीरे उधर को ही बढ़ चली।

पटवारी दातादीन के पास पहुंचकर बोला,–'क्यों चौधरी दातादीन मैं पूछता हूं कि क्या शराफत के यही मायने हैं ?"

"क्या है पटवारी जी ?" कुछ न समझते हुए आश्चर्य-चकित होकर दातादीन ने पूछा।

"क्या है पटवारीजी ? दूसरों के खेत काटते तुम्हें बुरा नहीं लगता ?" व्यंग्यपूर्ण स्वर में पटवारी ने पूछा।

"लेकिन मैंने तो आज तक किसी का खेत नहीं काटा। आज तीन साल से इसी जंगल से घास खोद रहा हूँ,—कभी किसी ने यह ताना नहीं दिया मुझे।" दातादीन ने नम्रतापूर्वक कहा।

"न दिया होगा, लेकिन मुझे ये बातें पसन्द नहीं। मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे खेतों पर घास खोदने भी आओ।"

साहूकार का बेटा बम्बे की पाल पर खड़ा-खड़ा मुसकरा रहा था। वहीं से सहानुभूति दिखाते हुए बोला,—"अरे पटवारीजी! रहने भी दो न, चौधरी दातादीन को! बेचारे घास ही तो खोद रहे हैं। कोई चोरी डकैती के लिए तो आये नहीं हैं तुम्हारे खेत में।"

दातादीन की दृष्टि साहूकार के बेटे पर गई तो वह पत्थर की शिला के समान जड़ हो गया। झुनिया चुपचाप यह सब कुछ देख रही थी। जो भगवान् दातादीन को यह खेल खिला रहा था, उसी भगवान् की धरती का मालिक पटवारी दातादीन को पेट भरने के लिए घास खोदने से भी वंचित कर रहा था।

दातादीन पटवारी की दशा देखकर मुसकरा दिया और साहूकार के बेटे की ओर देखकर बोला,—"बेटा! मुझे तेरी सहानुभूति की जरूरत नहीं और न ही मुझे पटवारी की घास चाहिए। इसी पटवारी को अपने खेतों की लम्बी-लम्बी चरी की पूलियाँ न जाने कितनी बार मुफ्त भेजी होंगी दातादीन ने और तेरे बाप की गाय का चारा तो सदा दातादीन के ही खेतों से आता था। तूने उसी चारे से पली हुई गाय का दूध पिया है। इसमें तेरा दोष नहीं; दोष उस चारे का है। उसी के दूध को पीकर चन्दू डकैत बन गया,—लेकिन वह फिर ईमानदार डकैत है। जज के सामने साफ कह दिया कि उसने डाके में हिस्सा लिया था। लेकिन बेटा! तू तो दिन दहाड़े डकैती डालता है और चिकन का कुर्ता पहनता है।"

साहूकार का बेटा सिर खुजलाकर रह गया। दातादीन की रौबीली तनी मूँछें उसे भूली नहीं थीं। किस तरह उसका बाप दातादीन को

झुककर 'जैरामजी की' करता था, यह भी उसने अपनी आँखों से देखा था। पटवारी भी सन्न-सा रह गया। वह आगे न बोल सका,—एक शब्द भी।

दातादीन फिर गम्भीरतापूर्वक पटवारी की ओर मुँह करके बोला "यह घास पड़ी है। खोद मैंने जरूर दी है। ले जाना चाहो तो ले जा सकते हो। जिसने पेट दिया है, दो रोटी भी वह जरूर देगा।" और इतना कहकर दातादीन ने चादर का किनारा तमाम घास को जमीन पर गिराने के लिए पकड़ लिया।

पटवारी को दातादीन की पुरानी जिन्दगी याद आ गई। उसे यह भी याद आया कि जब वह पहले दिन इस गाँव में आया था तो दातादीन ने ही उसके खाने के लिए अनाज भेजा था। जब पटवारी ने गाँव में घर बनाया था तो दातादीन ने अपने बैल और अपनी गाड़ी दी थी उसके मकान का सामान ढोने के लिए। शहर से कड़ियाँ चौखटें, किवाड, फड़के, खिड़कियाँ, रोसनदान और दरवाजे पर का पत्थर भी दातादीन ही लिवा कर लाया था अपनी गाड़ी में।

जब पटवारी ने गाय मोल ली थी तो उसका चारा भी दातादीन के यहाँ से ही गया था।

पटवारी ने देखा कि दातादीन में आज भी वही अकड़ थी। नाक पर मक्खी बिठलाकर दातादीन गाँव में आज भी नहीं रहता था। गरीब था तो क्या हुआ? मेहनत करता था और गाँव में रहता था। कोई उसे देखकर चिढ़े क्यों? जले क्यों?

साहूकार का बेटा अन्दर-ही-अन्दर तिलमिला कर रह गया। 'रस्सी जल गई लेकिन उसके बल नहीं गये।' उसने मन-ही-मन कहा। वह ऊपर से मुसकराकर बोला,—"चौधरी साहब! आप मुझे बहुत गलत समझते हैं।"

"गलत या सही, मैं तुम्हें कुछ नहीं समझता बेटा! तू अपने मन में फिजूल दुखी हो रहा है। किसी को कुछ कहने के काबिल तो मेरे

चन्दू ने ही नहीं छोड़ा मुझे, लेकिन मैं तुझे और चन्दू को बराबर ही मानता हूँ।" कहकर दातादीन चुप हो गया। वह गठरी की घास को नीचे डाल देना चाहता था कि पटवारी ने आगे बढ़कर दातादीन का हाथ पकड़ लिया।

पटवारी ने घास की गठरी देखी तो उसमें खेत की पैदावार का एक भी पेड़ नहीं था। साहूकार के बेटे ने उसे गलत खबर दी थी और वह उसे सुनकर यों ही उठा चला आया था,—इसका उसे दुःख था। उसने साहूकार के बेटे की ओर मुँह करके कहा,—"तूने मुझे गलत खबर दी बेटे। चौधरी की घास की गठरी में तो गेहूँ की एक भी डाल नहीं।"

और वह गर्दन नीची किये वहाँ से चला गया। साहूकार का बेटा भी डुलमुलाता हुआ एक ओर को निकल गया।

जब सब चले गये तो झुनिया ने आश्चर्य से पूछा,—"बाबा? यह घास भी इन खेत वालों की है तो फिर जिन लोगों के पास खेत नहीं है, वह अपना पेट कहाँ से भरें?"

"मजदूरी से बेटी!" झुनिया के सिर पर प्यार-भरा अपना सूखा-ठिठुरा हुआ हाथ रखते हुए दातादीन ने कहा।

रमधनिया ने यह काण्ड देखा तो वह भयभीत-सी हो उठी थी परन्तु आज उसने दातादीन में जिस धैर्य के दर्शन किये वह देवताओं में भी दुर्लभ था। रमधनिया को अपने ससुर के धैर्य से बल मिला—साहस की पराकाष्ठा थी वह।

झुनिया मौन हो गई दातादीन का उत्तर सुनकर,—परन्तु कुछ सोच रही थी वह।

दातादीन मुस्कराते हुए बोला,—"बेटी झुनिया! यह पटवारी मेरे अहसानों से दबा है।" और फिर इस बुढ़ापे में भी दातादीन ने अपने फटे-पुराने कुर्ते की दोनों बाँहों को ऊपर चढ़ाते हुए कहा,—तेरे बाबा की इन बाँहों ने ऐसा कौन है इस बस्ती में जिसे दबा नहीं रखा है अपने अहसानों से। दातादीन जिन्दगी भर दूसरों के काम आया है।

अपने काम का नुकसान करके दातादीन ने दूसरों का काम किया। अपने खेत सुखाकर दूसरों के खेत भरे हैं।" इतना कहकर दातादीन ने एक गम्भीर साँस ली। फिर रमधनिया की ओर मुँह करके बोला—"बेटी रमधनिया! बस भुनिया की शादी इन आँखों के सामने देखना चाहता हूँ।"

दातादीन रो रहा था। उसके नेत्रों से आँसू की बूँदें ढुलक-ढुलककर घास के अंकुरों पर लटकने वाली ओस की बूँदों में मिल गईं। उसके आँसू प्रकृति के आँसुओं में विलीन हो गये।

रमधनिया ने फिर दातादीन के साथ मिलकर घास के गट्ठे बँधवाये।

घास का गट्ठा सिर पर लिए आगे-आगे दातादीन था, पीछे रमधनिया और बीच में भुनिया चल रही थी। एक घघरी, सिर पर ओढ़नी, शरीर में ऊँची-सी कुर्ती और पैर नगे थे भुनिया के। वह रमधनिया के सामने-सामने चल रही थी,—रमधनिया की दुनियाँ उसके सामने थी। भुनिया के एक-एक पग-चाप पर रमधनिया बलिहारी जाती थी।

घर के अहाते के पास पहुँचे तो चहारदीवारी की कच्ची दीवाल के ऊपर से ही गय्या घास की गठरी देखकर रेंम्भाने लगी। भुनिया की दादी धूप में पीढ़ा डाले चर्खा कात रही थी। उसे तो और कुछ काम ही नहीं था आजकल।

रमधनिया ने आज सात वर्ष पुरानी इस झोंपड़ी के स्थान पर एक कोठा बना लिया था। वह कोठा दातादीन के पहले मकान के कोठे से बड़ा था। दालान और दुवारी बनाने का उसे खयाल ही नहीं था। कोठा बनाने-ही-बनाने में तीन वर्ष जाने किधर को निकल गये इस परिवार के।

अब भुनिया बड़ी हो गई थी। भुनिया की दादी कर्तें की ओर सबका ध्यान था। भुनिया की दादी तो मानो सूत कातने की मशीन

ही बन गई थी। उसके चर्खे के हर तार में उसे झुनिया की शादी दिखलाई देती थी। उसने अपनी सारी शक्ति को चर्खे से निकलने वाले तारों में केन्द्रित कर दिया था।

झुनिया अपनी दादी के पास बैठकर न जाने कितनी बातें करती थी। दादी का दिल गद्गद् हो उठता था झुनिया की बातें सुनकर। कितनी समझदार थी उसकी पोती,—कितना सन्तोष था उसमें। चन्द्र का गोल, बड़ी-बड़ी आँखों वाला मुँह मानो भगवान् ने वहीं से छुटा कर झुनिया के लगा दिया था ज्यों-का-त्यों।

अपने बाप के बारे में जब कभी झुनिया के मन में कोई बात आती तो वह दादी से उसका जिक्र नहीं करती। वह जानती थी कि उसका जिक्र करने से दादी उदास हो जाती थी। दादी के दिन मे दस काम करती थी झुनिया। दादी का चर्खा बिछाना, चर्खे के पास पीढ़ा बिछाना, पास ही मिट्टी के भाँवले में उपले की आग तापने के लिए भरकर रखना और एक कटियल में थूकने के लिए राख रखना झुनिया कभी नहीं भूलती थी।

फिर रात को दादी के लिए खटिया भी झुनिया ही बिछाती थी और उस पर फटा हुआ बिछौना भी। दादी के लौटने पर धीरे-धीरे उसके हाथ पैर भी कभी-कभी झुनिया दाब देती थी,—कितनी प्यारी थी झुनिया, दादी की आँखों का तारा थी।

रमधनिया को नाज था अपनी मोरनी-सी झुनिया पर, जिसके सामने आते ही रमधनिया के जीवन में एक नई लहर उठ खड़ी होती थी,—एक नई दुनियाँ! रमधनिया की दुनियाँ नहीं, झुनिया की दुनियाँ! झुनिया की रंगीन दुनियाँ,—झुनिया की शादी होगी झुनिया का दूल्हा आयेगा, झुनिया के बच्चे होंगे………।

रमधनिया के बाल पकने लगे अब।

धीरे-धीरे प्रात वर्ष बीत गये। आशा और साधारण जीवन की निराशा ने रमधनिया के जीवन का रस सोख लिया था। जवान होने

पर भी वह बुढ़िया-सी जचने लगी। दातादीन और झुनिया की दादी तो अब हो ही गये थे बूढ़े।

इस दस वर्ष के संघर्ष में रमधनिया ने दातादीन का बेटा बनकर साथ दिया। साथ ही नहीं दिया रमधनिया ने, बल्कि इस गृहस्थी को चलाया और इज़्ज़त के साथ चलाया। आठ वर्ष के भीतर दातादीन को कभी एक पैसा किसी से कर्ज का नहीं लेना पड़ा। यही तो वह क रहा था सन्ध्या को अकेले में झुनिया की दादी के पास बैठा,—"झुनिय की दादी ! तू क्या जानेगी अपनी बहू के गुणों को ?"

मैं नहीं जानूँगी तो क्या तू जानेगा।" तुनक कर गर्व के साथ झुनिय की दादी ने चर्खे का तार पिंदिया पर डालकर हाथ रोकते हुए कहा। "घर चलाना काम औरतों का है और फिर मेरी बहू......वह बोल न सकी आगे। बहू की तारीफ वह कर नहीं सकती थी। बहू की तारीफ़ करना शुरू करते ही उसे चन्दू की याद आ जाती। वह अपने गर्व को ठेस लगते देखकर इस बुढ़ापे में भी तिलमिला उठती थी।

दातादीन पर उसकी हुकूमत थी और दातादीन इसे मानता था। वह मुसकरा कर कहता,—"मुझे तो सुधार दिया तूने लेकिन अपने चन्दू बेटे को न सुधार सकी, वह भी उसे न रोक सकी। एक तूफ़ान था उनमें और वह उठकर टकरा ही गया।" कहकर दातादीन चुप हो गया। एक दर्द-सा उठने लगा उसके सीने में।

चन्दू की माँ कुछ नहीं बोली लेकिन वह रमधनिया के इस कसूर को माफ़ नहीं कर सकती थी। उसके विचार से यदि रमधनिया चाहती तो उनका चन्दू कभी जैल न जाता।

अपनी यह धारणा कभी-कभी झुनिया की दादी को भी अपने दिमाग का फितूर-सा मालूम देने लगता, परन्तु वह रोक भी नहीं सकती थी अपने इस विचार को। इस विचार को ठेस लगने से चन्दू की माँ के गर्व का किला जिस पर उसके यौवन की विजय का झण्डा फहराया था,—झण्डा फहराया था दातादीन के दिल पर, धराशायी हो जाता।

यह गर्व ही आज झुनिया की दादी के जीवन की वह अक्षुण्ण शक्ति थी जिसके आधार पर उसकी बूढ़ी हड्डियाँ दधीचि की हड्डियों का बल लेकर अबाध गति से चर्खे का तार पिन्न-पिन्न कातती चली जा रही थी।

इसी समय झुनिया ने सामने आकर बाबा को खाने का सन्देश दिया। दातादीन ने अपनी थाली मँगाली। झुनिया की दादी पास बैठी चर्खा कातती रही और उसी जगह बैठकर दातादीन ने प्याज, मिर्च की चटनी, मट्ठा और गुड़ की एक डली से खाना खाया।

खाने में दातादीन ने चार-चार स्वाद किये। साहूकार का बेटा बाहर की दीवार के कौने से झाँक रहा था। उसने महसूस किया कि वह दातादीन का सब कुछ लेने पर भी उससे उसकी शान्ति न छीन पाया। उसके हृदय पर एक चोट लगी, उसे अपने में गिरावट महसूस हुई और उसके झूठे गर्व ने उसे दोनों हाथों से पकड़कर झकझोर दिया। वह तिलमिला उठा,—उसे अपनी शक्ति का गढ़ ढहता-सा प्रतीत हुआ। उसकी आँखों के सामने दातादीन की वह मोटी और सूखी भुजायें आ गईं जिन्होंने दो बार अपनी मेहनत से उजड़े हुए घर बसाये थे, उसने आज तक इस जमीन पर पैदा होकर कुछ बनाया ही था, मिटाया नहीं।

: ६ :

दातादीन ने चन्दू की माँ को साहूकार के बेटे की पूरी हरकत सुनाई तो वह मुसकराने लगी। शायद जवानी के दिनों में यदि वह सुन पाती तो वह करारी फटकारें बतलाती पटवारी और उस साहूकार के बेटे के बाप का भी मिजाज दुरुस्त कर देती। एक दबदबा था जवानी के दिनों में चन्दू की माँ का इस गाँव में। पटवारी काँप कर ड्योढ़ी पर चढ़ता था और साहूकार···उसकी तो कभी जबान ही नहीं हिली चन्दू की माँ के सामने।

"अपने बाप का हमारी ड्योढ़ी पर गिड़गिड़ा कर चढ़ना भी भूल

गया साहूकार का बेटा", मर्ना थामते हुए चन्दू की माँ ने कहा।

"हमारा क्या जो खराब है चन्दू की माँ। कोई गिरह सिर पर आ गई है, वर्ना दातादीन की मूँछें नीचे जाने वाली नहीं थीं। लेकिन फिर भी मैंने एहसान किसी का नहीं लिया चन्दू की माँ। पटवारी को वह पाजी लड़का धोखे से ले आया, वर्ना आने वाला नहीं था वह। उसे बाद में बड़ा अफ़सोस हुआ अपने आने पर।"

यह सुनकर चन्दू की माँ बोली,—"भला आदमी है पटवारी भी बुरा नहीं है बेचारा। किसी के भले में नहीं, तो बुरे में भी नहीं है।"

"लेकिन कमाई तो खूब की है, चन्दू की माँ, उसने हमारे गाँव में।" दातादीन बोला।

"की होगी। अपने को इसमें क्या? करना ही है जिसमें मन पड़ती है।" और इतना कहकर चन्दू की माँ ने एक गहरा साँस लिया। एक अन्धकारपूर्ण बीता कल उसके सामने आ गया। वह दिन कितना भयानक था जिस दिन चन्दू जेल चला गया था और दातादीन बीमार होकर खटिया से लग गया था। घर में दूसरे दिन खाने के लिए भी नहीं था। सब कुछ घर का लुट गया था और कर्ज़...कर्ज़ हो गया था......फिर घरबार भी सब जाता रहा। चन्दू की माँ के जीवन की प्रगति वहीं जाकर रुक गई। वह गृहस्थी को आगे चलाने का मार्ग न निकाल सकी।

उस समय रमधनिया ने गृहस्थी को चलाने का भार अपने ऊपर लिया। दातादीन और चन्दू की माँ ने अपनी सब ताक़तों को रमधनिया के अर्पण कर दिया और रमधनिया .....।

रमधनिया ने घर सम्भाला और शान के साथ सम्भाला। थी गरीब ही, लेकिन खाने कपड़े का प्रबन्ध उसने कर लिया। इसी में से कुछ काट-कपटकर रमधनिया भुनिया की शादी के लिए भी करती जाती थी।

रमधनिया ने आज, जब दातादीन और चन्दू की माँ बाहर चौक में बैठे बातें कर रहे थे तो उनके सामने दस तीयलें निकालकर रख दीं। पाँच लहँगों पर पाँच ओढ़ने थे, रंगीन गोटे लगे हुए और उनके ऊपर

पाँच अँगियाँ कसी हुई थीं। इनके अलावा पाँच कोर्स की धोतियाँ पर लम्दराज का दो-दो गज कपड़ा था। वलावे से बँधी थीं सब तीयलें एक करीने के साथ।

दातादीन और चन्दू की माँ इन्हें देखकर दङ्ग रह गये। यह सामान रमधनिया ने झुनिया की शादी के लिए तय्यार किया था, यह कहने की बात नहीं थी।

लहँगे और ओढ़ने सब चन्दू की माँ के काते हुए सूत से तय्यार किये गए थे। कपड़ा हाथ में आते ही चन्दू की माँ ने पहचान लिया। "देखा औरतों का काम।" चन्दू की माँ ने कहा। "चन्दू ही मेरा नालायक निकल गया। अगर ढंग से चलता तो रमधनिया-सी बहू पाकर क्या-कुछ नहीं कर सकता था?" आज पहली बार झुनिया की दादी ने ये शब्द कहे।

रमधनिया पीछे खड़ी सुन रही थी। दातादीन को भी आज यह वाक्य चन्दू की माँ के मुख से सुनकर इतना सुख हुआ कि वह चन्दू की माँ से एक शब्द भी न बोला। कुछ देर सभी मौन रहे।

इतने में मुनिया झुनिया के साथ अन्दर भहाते में घुस आई। मुनिया को चन्दू की माँ ने बुढ़ापे में भी खड़ी होकर पीढ़ा दिया और बिठलाकर तीयलें दिखलाती हुई बोली,—"मुनिया बेटी! यह देख तो झुनिया की शादी का सामान। गरीबी में भी जो कुछ बन पडा है कर रहे हैं तेरे ताऊ।"

"ना बेटी! मैंने कुछ नहीं किया है," दातादीन बोला और इस समय उसका रोम-रोम पुलकायमान था।

मुनिया देखकर बहुत प्रसन्न हुई। उद्‌गारों में भरकर बोली,—"ताऊ! देवी बहू दी है तुम्हें भगवान् ने।"

"सचमुच देवी है यह!" चन्दू की माँ ने प्रसन्नतापूर्वक कहा। आज चन्दू की माँ वास्तव में बहुत प्रसन्न थी। इन तीयलों के रूप में चन्दू की माँ ने अपनी चर्खे पर की हुई साधना का फल पाया।

भगवान् ने उसे सब-कुछ दिया था—उसे सन्तोष था।

अब तो झुनिया की शादी ही वह धूमधाम के साथ अपनी आँखों के सामने देखना चाहती थी।

शरीर से अब चन्दू की माँ का विश्वास उठता जा रहा था। वह उसे कुछ कमजोर और रोग-ग्रस्त सा दिखलाई देने लगा था। पता नहीं कब जवाब दे जाय!

दादी और बाबा, दोनों अपनी अनुभवी आँखों के सामने झुनिया को जिन्दगी की नौका पर चढ़ा देना चाहते थे। वे चाहते थे कि उनके देखते-देखते झुनिया अपने जीवन की पतवार सम्भाल ले।

जब झुनिया के स्वस्थ यौवन पर उनकी नजर जाती थी तो उन्हें अपनी बच्ची संसार का एक अनमोल रत्न दिखलाई देती थी। उस जैसा सुन्दर उन्होंने आज तक जीवन में केवल चन्दू ही देखा था।

रमधनिया भी जब गाँव में आई थी तो उस वर्ष गाँव में आने वाली बहुओं में उसका पहला नम्बर था। गजब के सौन्दर्य का निखार था! यौवन फूटा पड़ता था। चन्दू की माँ ने रमधनिया का जो रूप उस समय देखा, वही इस समय झुनिया में था। चन्दू और रमधनिया का मानो एकीकरण हो गया था झुनिया में। नक्शा एक का था तो उभार दूसरी का! नेत्र रमधनिया के थे तो नाक का उभार चन्दू का, गरदन चन्दू की थी तो होंठ रमधनिया के। सब-कुछ सुन्दर-ही-सुन्दर था वहाँ।

मुनिया की दृष्टि भी झुनिया के उभरते हुए यौवन पर गई तो उसे अपनी याद आ गई। अपनी सुसराल वालों का व्यवहार उसे याद आया।

अच्छे वर की समस्या मुनिया के विचारों में आकर खटकने लगी। जरा भी खाना-पीना घर होता है तो मुँह फट जाता है। दूसरे का दिया-लिया कुछ जँचता ही नहीं उन्हें और बेटी तो मानो उनकी बाँदी बनाकर ही सेवा के लिए भेजी जाती है और फिर अगर वह कहीं बीमार हो जाए तो उसे उसके पीहर वालों के यहाँ पटक दिया जाता है।

मनिया के दिल में एक दर्द-सा उठने लगा झुनिया की मनोहर मूर्ति को देखकर।

झुनिया कोठे के सामने रमबनिया के पास बैठी बातें कर रही थी।

"तू चुप क्यों हो गई मुनिया ! यह मैं समझ गया। तू झुनिया के लिए परेशान मत हो। भगवान् को जो मंजूर है वह होगा। मैं जानता हूँ, जो होने वाला है उसे मैं नहीं बदल सकता। इसलिए मैंने अपने को *जब तक मजदूरी कर सकूँगा, मजदूरी करने और जब न कर सकूँगा*, तब जैसी मुझ पर पड़ेगी उसे सहन करने के लिए छोड़ दिया है। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता मुनिया ?"

और दातादीन इस समय प्रसन्न था। वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। दुनिया पर वह हँस रहा था। परिस्थितियाँ उसका मजाक बनाना चाहती थीं परन्तु उसने दुनिया को मजाक समझकर अपनी आँखों की पुतली नीले आसमान पर बिछा दी।

मुनिया आज दातादीन के अन्दर कुछ-कुछ झाँक सकी। कितना गहरा, कितना गम्भीर, कितना निश्चल, कितना कर्त्तव्यारूढ़—दातादीन एक अथक यात्री था, जिसने जिन्दगी के सदमे उठाये थे, विचलित भी वह कभी-कभी हो गया था अपने रास्ते से, लेकिन उसने चलना बन्द नहीं किया। वह किसी से दबकर नहीं चला,—उसने किसी का बुर नहीं चेता।

दातादीन हँसता हुआ बोला,—"मुनिया बेटी ! मैं झुनिया की शादी करूँगा। मैंने चन्दू की शादी की थी। झुनिया की शादी चन्दू को करनी चाहिए थी, लेकिन वह नालायक निकल गया। उसने अपने माँ-बाप को दोहरे बोझ से लाद दिया, धोखा दिया उन्हें।

"*दब हम जरूर गये थे मुनिया,—लेकिन हमारी बहू ने हमें उबार* दिया और अब मुझे यकीन है कि हमारी बहू झुनिया की शादी खूब आन-बान के साथ करेगी।"

मुनिया को बहुत सुख मिला दातादीन की ये बातें सुनकर।

रमधनिया पर मुनिया को भी पूरा-पूरा विश्वास था। गड्ढे में जाती हुई इस गृहस्थी को किस तरह उसने उबारा वह मुनिया से छिपा नहीं था।

मुनिया ने आज जब भुनिया के सामने रमधनिया से भुनिया की शादी की बात की तो वह लजाकर दादी-बाबा के पास दौड़ गई, जंगल की हिरनी के समान।

रमधनिया ने अपनी भुनिया को घर-बाहर का काम-काज समय निकालकर किस ढंग से सिखलाया था, यह वही जानती थी। घर का सभी काम-काज करना भुनिया खूब जान गई थी। काम भुनिया के सामने नाचता था। फुर्ती उसमें कमाल की थी। थी मस्ती भी और कभी-कभी वह इठलाकर लेट जाती थी तो लाख कहने पर भी फली फोड़कर नहीं देती थी, लेकिन जब जुट जाती थी काम पर तो पाँच-पाँच औरतों का काम चुटकी में खींचकर फेंक देती थी।

"अब तो बेटी का सुख उठा रही हो बहू!" मुसकराकर बोली।

रमधनिया ने मुनिया के लिए टाट का टुकड़ा अपने नीचे से निकालकर बिछा दिया। फिर पैर लगी वह मुनिया के और मुनिया की मुसकराहट में अपनी मुसकान मिलाकर प्रसन्नतापूर्वक बोली,—"ननदजी! बेटी का सुख भी भला किसी ने देखा है! बेटी दूसरों का धन है।"

"लेकिन धन करके कोई माने भी बहू! मानते तो कूड़ा करके हैं। अपने कपूत और आवारा भी आँखों के तारे लगते हैं और दूसरे के दिन की टुकड़ियाँ भी दुनिया को कूड़ा-करकट ही जँचती हैं।" गम्भीरतापूर्वक मुनिया ने कहा।

रमधनिया इस पर कुछ न बोली। मुनिया के हृदय का यही मर्मस्थल था। उसके दिल पर एक पर एक गहरी चोट मारी थी उसके ससुराल वालों ने। उसके आत्म-सम्मान को ललकारा था।

"मुनिया की शादी की तीयर्ने देखीं बहू! बहुत दुखी हुई। मेरी

भुनिया को अच्छा वर मिल जाय, मैं तो भगवान से सदा यही माँगती हूँ।" मुनिया प्रसन्न होकर बोली। इस समय मुनिया के मुख का भाव बिलकुल बदल गया था।

मुनिया के मस्तिष्क में पुरानी घटनाएँ कभी-कभी यों ही उभर आती थीं, परन्तु मुनिया ने उन पर विजय पाना सीखा था। वह दुनिया की खुशी में खुश होना और रंज में रंजीदा होना जान गई थी।······ और भुनिया; उसे तो पिछले आठ-नौ वर्षों से पाला ही मुनिया ने था। मुनिया के जीवन में एक काम लग गया था भुनिया का। सुबह की बासी रोटी उसे भुनिया के बिना स्वाद नहीं लगती थी। फिर भी दिन में दो-चार बार जब तक वह भुनिया को देख नहीं लेती थी, उसे चैन नहीं पड़ता था।

प्यारी भुनिया को भी मुनिया बहुत थी। दोपहर के खाने के बाद जब मुनिया को दातादीन के घर आने में देर हो जाती तो भुनिया की दृष्टि उसीकी खोज में अपनी कच्ची दीवार फाँदकर दगड़े में फँस जाती थी। बर्तन माँजते हुए एक ओर वह कलैंडी को जूने से रगड़ती थी और दूसरी ओर उसके कान मुनिया के लीतरों की अहाते में घुसने की आवाज सुनने के लिए आतुर बने रहते थे।

भुनिया मुनिया को अपनी दूसरी माँ गिनती थी,—और आदर भी वह मुनिया का बहुत करती थी। पिछली बार मुनिया जब बीमार पड़ गई तो दस दिन तक भुनिया ने ही मुनिया के बाप का खाना बनाया था। मुनिया के घर का सब काम-काज उसीने सँभाला था। बीमारी में मुनिया का काम भी उसने इस तरह लगकर किया कि वह मुनिया की आँखों में बस गई।

भुनिया की उभरती जवानी को देखकर आज मुनिया को भी लगा कि उसकी शादी हो जानी चाहिए। उम्र कुछ इतनी आगे नहीं बढ़ी थी भुनिया की कि जिसे बढ़ना कहा जा सके,—लेकिन स्वतन्त्र वाता-वरण में बाबा, दादी और माँ के प्यार में पली भुनिया—स्वाभाविक

उभार लिए जीवन के मुक्त स्रोत के समान तीखी और स्वच्छन्द थी। झुनिया के चुभते हुए सौन्दर्य-प्रवाह पर भी मुनिया की दृष्टि गई। झुनिया को नौजवानी में पगी फूल के मानिन्द सुन्दर और मीठी पाया। मुनिया बोरी पर कोठे की दीवार से कमर लगाकर बैठ गई और रमधनिया से बोली,—"बहू ! लड़का अच्छा देखना चाहिए। रुपये-पैसे वाले घर में लड़की को भेजना लड़की की जिन्दगी बरबाद करना है।"

यह बात मुनिया की रमधनिया के मन लगती थी और अच्छा घर-बार देखने की उसमें ताकत ही कहाँ थी। वह तो किसी तरह लड़की के हाथ पीले करने का ढंग सोच रही थी। वह चाहती थी, कोई मेहनती आदमी मिल जाय जो मेहनत से अपना और उसकी झुनिया का पेट भर सके।

"बस यही उसकी इच्छा थी"—उसने मुनिया से कहा।

मुनिया बोली,—"तुमने बहुत ठीक सोचा है बहू ! इज्जत के साथ हाथ पीले हो जाएँ यही सब-कुछ है। अब ताऊजी को चाहिए कि किसी मेहनती लड़के की खोज करें।"

"तुम भी ननदजी ! अपने बापू ········"

"यह भी भला कुछ कहने की बात है बहू ! मैं अपनी झुनिया के लिए सब-कुछ करूँगी।" मुनिया ने रमधनिया को आश्वासन दिया।

मुनिया ने रमधनिया की पिछले आठ वर्षों में हर कठिनाई के समय सहायता की थी। रमधनिया के मुसीबत के समय उसने और उसके पिता ने आगे बढ़कर उसका और दातादीन का हाथ पकड़ा था। रमधनिया को मुनिया पर पूर्ण विश्वास था।

"तुम्हारा कितना बड़ा सहारा है मुझे ननदजी !" रमधनिया ने कृतज्ञतापूर्ण स्वर में कहा। "कभी-कभी ऐसा लगता है मानो भगवान् ने मेरी ही मदद के लिए तुम्हें इस गाँव में पैदा किया है।"

"दर्द-से-दर्द जाकर अपने आप मिल जाता है रमधनिया ! यह

तुम्हारे जीवन की दर्द-भरी कहानी है जिसने मुझे तुमसे लाकर मिला दिया और हम मिलकर चल सके इसका कारण मेरे और तुम्हारे दिल की ईमानदारी है। भगवान् करे हम दोनों एक-दूसरे की मुसीबत में ईमानदारी से काम आते रहें," मुनिया गम्भीरतापूर्वक बोली। मुनिया के शब्दों में एक अनोखी ही ऐंठ-सी रहती थी, परन्तु उस ऐंठ के नीचे कितनी दया छुपी थी, यह पता रमधनिया और भुनिया के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं था और था कुछ-कुछ मुनिया के पिता को जिसकी सेवा के लिए उसने अपनी ससुराल का मोह त्याग दिया था।

मुनिया के जीवन में मानो ससुराल, सास, ससुर, पति इन सबकी एक धुँधली-सी झाँकी-भर आकर रह गई। वह क्या होते हैं, यह मुनिया न जान सकी।

और रमधनिया ने केवल ससुराल ही जानी थी, जाना था पीहर में भी एक मजदूरिन की तरह सोलह वर्ष तक चक्की पीसना, बर्तन माँजना, घास खोदना, कुट्टी काटना, सिल्ले चुनना यही काम उसने किये थे और उसका बाप अपने घर के सामने नीम के पेड़ के नीचे बैठा हुक्का गुड़गुड़ाता था, ताश खेलता था। पुलिस के रजिस्टर में उसका भी नाम था और रात को पुलिस का सिपाही उसे आवाज़ लगाने आता था।

यही आवाज़ रमधनिया ने जिस दिन चन्दू के लिए सुनी तो उसके पैर काँपने लगे थे। लेकिन यहाँ तो उसने चन्दू का दस साल के लिए जेल चला जाना भी सुना। सुना और सहन किया,—एक बहादुर औरत की तरह सहन किया।

: १० :

भुनिया का रमधनिया को बड़ा सहारा था। अब तो वह रमधनिया का कितना ही काम चुटकियों में करके फेंक देती थी। रमधनिया जब चक्की का पहला कौर डालती तो भुनिया उठकर खड़ी हो जाती थी। पहले अपनी माँ के साथ बैठकर चक्की पिसवाती और जब ज़रा उजाला

होने लगता तो चक्की छोड़कर चूल्हे पर बासी रोटियों के काम से जुट जाती थी। रमधनिया के चक्की का आटा उठाने और आटे की गोन में भरते-भरते वह बासी रोटी पो डालती तथा परात धोकर खड़ी कर देती थी और फिर तैयार हो जाती अपनी माँ के साथ सिल्ला चुगने के लिए जाने को।

"अब जा रही हो बेटी सिल्ला चुगने", मुनिया की दादी चर्खे पर बैठकर मुनिया से पूछती।

मुनिया कहती, "हाँ दादी ! माँ तैयार हो गई। लो तुम भी रोटी तो खालो। तुम्हें खिलाकर ही जाऊँगी मैं।"

और मुनिया की दादी वहीं चर्खे पर बैठी-बैठी दो रोटियाँ हाथ में लेकर मिर्च या प्याज की चटनी से खा लेती। मुनिया के प्यार-भरे मुँह पर देखकर मुनिया की दादी को ये मिस्सी रोटियाँ, पानी के हाथ की मोटी लगती थी, उनमें न जाने उसे कितना स्वाद आता !

दादी का सब काम ठीक से जमाकर मुनिया दातादीन वाली गाढ़े की चादर कन्धे पर डाल, रमधनिया के साथ खेत जाने को तय्यार हो जाती। अपनी फूलदार ओढ़नी को बड़ी शान से ओढ़ती थी मुनिया। उस पर गोटा लगा था और वाकई जब मुरगायटा मारकर ओढ़नी का चमकदार गोटा उसकी लम्बी सुडौल गरदन में आकर रेखा बनाता था तो ऐसा लगता था मानो चित्रकार ने सुराही की गरदन में अपनी सुनहले रंग की तूलिका चलाई थी।

"तू भी तो दो रोटी खा ले मुन्नो !" "रमधनिया प्यार में मुनिया को मुन्नों ही कहकर पुकारती थी और यह प्यार का नाम उसे उसकी बुधा मुनिया ने दिया था। जब मुनिया को मुनिया 'मुन्नो' कहकर पुकारती थी तो मुनिया के दिल में स्नेह की गुदगुदी-सी उठने लगती। वह अन्दर-ही-अन्दर प्यार में फूलकर कुप्पा हो जाती और इन दो मीठे शब्दों के सुनने में उसे कितना आनन्द आता, यह उसकी मुसकराती हुई मुद्रा और मस्तानी पंजों-ही-पंजों के बल चाल के अलावा और कोई स्पष्ट

नहीं कर सकता था ! वह चाल तो चल डालती थी झुनिया के मीठे दिल के सलोने सपने ! जवानी पर प्यार की रेखा खिंच जाती थी। उसमें मिठास आ जाता था और नेत्रों की पुतलियाँ मजबूर हो जाती थीं अपने अन्दर भरी हुई मस्ती की उमगों को बाहर उँडेल देने के लिए। झुनिया की जवानी का सौन्दर्य आज छाया हुआ था। दातादीन के इस कच्चे कोठे और कच्ची चहारदीवारी वाले जोहड़ के किनारे के घर पर। यही था झुनिया के यौवन का वह मधुमास जिसने दातादीन, झुनिया की दादी और रमधनिया जैसे सूखे और झुलसे हुए वृक्षों पर भी अपनी छटा बखेर कर उन्हें रंगीन बना दिया था,—एक उमंग और उत्साह भर दिया था उनके जीवन में। झुनिया इन तीनों वृक्षों पर लगने वाली कलिका थी, जिसकी जवानी का फूल विकास की ओर बढ़ रहा था।

"कतने में बँधी रोटियाँ दिखलाकर झुनिया कहती,—"ये बाँध ली हैं माँ ! बाबा के पास बैठकर खाने में बहुत अच्छी लगती हैं बासी रोटी," और इतना कहकर वह मटककर चारों ओर नाच जाती,—स्वाभाविक यौवन की मस्ती में और आँखों की पुतलियों को वह तरेरा देती कि उसे देखकर रमधनिया अपने जन्म-जन्मान्तर के दुःखों को भूल जाती,—मानो कभी कुछ हुआ ही नहीं। वह हमेशा से ऐसी ही थी।

ये शब्द झुनिया की दादी के कानों में पड़ते तो मानो अमृत घुल जाता। झुनिया का प्यार दातादीन के लिए देखकर वह अन्दर-ही-अन्दर प्रसन्नता में निमग्न हो जाती और नेत्र बन्द कर लेती एक क्षण के लिए।

फिर रमधनिया और झुनिया चल देतीं कोठे का कुन्दा लगाकर अपने रोजाना के काम पर। कुत्ते-बिल्ली की हिफाजत के लिए रहती ही थी वहाँ झुनिया की दादी।

इस वर्ष सिरसों का काम रमधनिया और झुनिया ने ही तोड़कर किया। झुनिया को इस साल से पहले कभी रमधनिया घर से बाहर के

काम पर नहीं ले गई थी। लेकिन इस साल तो उसके लिए भुनिया की शादी का शुभ मुहूर्त था। उसे इस वर्ष यह काम हर हालत में सम्पन्न करना था।

रमधनिया अगर दो बोरों के बराबर सिल्ला चुनती थी तो भुनिया चार बोरों के बराबर और क्या मजाल जो इन दोनों के चुगने के बाद खेत में एक दाना भी वहाँ रह जाता। खेतों वाले किसानों की ओर से रमधनिया और भुनिया से सिल्ला चुनवाने में बहुत खुश रहते थे और इन्हें हिस्से में एक-दो मूठ अनाज और अधिक ही दे देते थे। गेहूँ के खेत में चुगनी थी तो चुगाई का दसवाँ हिस्सा पा जाती थीं; जौ, मटर, चना इत्यादि का खेत होता था तो तिहाई का अनाज मिल जाता था,—मतलब यह कि जो-कुछ भी मिल जाता था इससे अधिक सरोकार न रखकर खूब जुटकर काम करती थीं। बस इसी ओर माँ-बेटी का ध्यान रहता था।

सन्ध्या को अपना हिस्सा बँटवाकर भुनिया उसे गाढ़े की चादर में बाँध लेती और फिर माँ-बेटी चल देती थीं घर की ओर। रमधनिया जब अपनी और अपनी बेटी की दिन-भर की मेहनत की उस गठरी की ओर देखती तो उसका मन गर्व से तरंगित हो उठता था,—परन्तु गर्व को दबाकर सूखे मुख पर मुसकान बिखराने की कला में वह अब निपुण हो चुकी थी।

"भुन्नो! आज तो बहुत सिल्ला चुगा है तूने।" रमधनिया रास्ते में प्यार-भरी थपकी भुनिया की पीठ पर देकर कहती।

"माँ! बालें ही बहुत पड़ी थीं इस खेत में। बिछौना-सा बिछा हुआ था! बस समेट-समेटकर भर लिया मैंने चादर में," आँखों की पुतली घुमाकर भुनिया कहती – "दिन ही छिप गया माँ! नहीं तो आज बहुत सिल्ला चुग डालती, पूरा खेत-का-खेत बटोर डालती।" और इतना कहकर भुनिया अपनी माँ के प्रसन्न चेहरे पर नेत्रों-ही-नेत्रों में प्यार पाने के लिए देखती।

"तू तो चाहती है दिन ही न छिपे भुन्नो ! और बस तू सिल्ला ही चुगती रहे," रमधनिया कहती और सचमुच अपने हृदय का प्यार *अपनी दृष्टि के द्वारा भुनिया के नेत्रों में उँडेल देती।*

"माँ, आज वाले खेत में सिल्ला चुगते बड़ा मन लगता है। पर जब ऐसा खेत सामने आ जाता है कि जिसमें छोटी-छोटी कहीं कोई बाल दिखाई दे जाती है तो जी कुढ़ने लगता है। बुरा लगता है माँ," भुनिया नाक चढ़ाकर कहती।

"बुरा न लगे तो क्या हो बेटी ! सारा बख्त जो खराब हो जाता है। बख्त ही तो हम मजदूरों की दौलत है। अगर वही खराब हो जाय तो हम लोग कहाँ से पेट भरें," सरलता से रमधनिया कहती।

और भुनिया माँ की बात को अपने पल्ले की गाँठ में बाँध लेती। कितनी संजीदा थी रमधनिया की भुन्नो, जो बात एक बार बतला दी वह कभी फिर जिन्दगी में दुहराने की जरूरत ही न महसूस हुई। पत्थर पर लकीर खींच दी मानो।

यहाँ से भुनिया और रमधनिया अपनी सिल्ले की गठरी लिए वहाँ पहुँचतीं जहाँ दातादीन ने दिन-भर की खोदी हुई घास का ढेर लगाया होता था और वहाँ पहुँचकर सिर की गठरी को गेंद की तरह एक ओर फेंककर भुनिया अपने बूढ़े बाबा से लिपटकर कहती,—"कितने अच्छे हो तुम मेरे बाबा ! कितनी घास खोद डाली तुमने ! बाबा, थोड़ी देर आराम भी कर लिया करो बीच-बीच में।"

"आराम-आराम से ही खोदी है भुनिया बिट्टो !" प्यार से बाबा कहता। "और तुम माँ-बेटियों ने तो आज गट्ठ-का-गट्ठ मार लिया है सिल्ले का। रामू के खेत पर गई थी क्या आज ?" दातादीन आश्चर्य से पूछता।

"नहीं बाबा ! जगना के खेत पर। बहुत सिलियारियाँ थीं, लेकिन हमसे ज्यादा कोई सिल्ला नहीं चुग सकी। और हाँ ! बिचारी कल्लू की चमारी भी आई थी सिल्ला चुगने लेकिन ...."

"लेकिन क्या बेटी !" दातादीन ने भयभीत-सा होकर पूछा।

"उसे गश आ गया बाबा ! बेहोश हो गई, बड़ी कमजोर थी वह—शायद कुछ बीमार भी। मैं मुनिया बुआ से कहूँगी कि उसे कुछ दवा-गोली दें।" बहुत ही सहृदयता और सहानुभूति के साथ भुनिया ने कहा। "माँ कुछ अनाज कल्लू की चमारी को देना चाहती थी बाबा ! लेकिन सुबह-ही-सुबह का वक्त था, सिल्ला चुगना शुरू ही किया था, बँटा नहीं था, शाम को भेजेगी माँ।"

दातादीन की आँखों में आँसू आ गए। अपने मोटे कुरते के एक छोर से उन्हें पोंछकर बोला,—"फिर तो वह सिल्ला भी नहीं चुग सकी होगी बेटी।"

"ना बाबा ! कहाँ चुग सकी। माँ ने उसके मुँह पर पानी का छींटा दिया, तब कहीं होश में आई। कुछ देर बैठी रही फिर। माँ भी उससे बातें करती रही। बस फिर चली गई बेचारी।"

दातादीन ने एक लम्बी साँस ली, लेकिन उसके दिल में उथल-पुथल मची थी। कल्लू चमार की जिन्दगी दातादीन के ही पास कटी थी, परन्तु जब से दातादीन के हल, बैल, खेत सब गये तब से कल्लू भी उसके पास से जाता रहा।

कल्लू बीमार था। पिछली रात को ही दातादीन कल्लू को देखने गया था। एक उतावलापन-सा दातादीन के चेहरे पर व्याप्त हो गया। रमधनिया को दातादीन के मुख पर आने वाले भावों को पढ़ने में देर न लगी। उसने तुरत घास की गठरी बँधवा दी। हलकी दातादीन ने सिर पर उठा ली और भारी रमधनिया ने।

मुनिया के सिर पर सिल्ले वाली गठरी थी जिसे वह बिना प्रयास, बिना मेहनत, बिना पकड़े आराम के साथ मस्ती से झूमती हुई लेकर दोनों के बीच में खेतोंनेत बाट-बाट चल रही थी। रोटियों का बोइया, र्‍ढ़ी, छाछ की पुटिया और पानी का करवा उसकी बगल में थे।

मुनिया की दादी दूर से इन्हें आता देखती, तो हर्ष से खिल उठती

थी। उसकी टूटी हड्डियों में भी कुछ जान-सी पड़ जाती थी, चर्खे का चक्कर जोर से घूमने लगता और उसके सूत का तार तेजी के साथ पिंदिया पर बल खा-खाकर लिपटने लगता था,—यह सब स्वाभाविक ही था,—वह करती नहीं थी कुछ विशेष।

तीनों ने घर के अहाते में घुसकर अपनी-अपनी गठरियाँ जमीन पर गिरा दीं। इसी समय छोरी भी आ गई और दातादीन की गाय तथा उसका बछड़ा मुँह उठाए घर के अहाते में घुस आये। घास की गठिया की खूँट से निकले दो-चार तृणों में मुँह मारकर गाय आगे बढ़ी तो भुनिया ने उन्हें सँभालकर खूँटे से बाँध दिया और फिर हरी-हरी घास भी डाल दी उनकी खोर में। भुनिया ने फिर प्यार से बछड़े के शरीर पर हाथ फेरा और गाय की थूथडी को भी अपनी गोद में लेकर सहलाया।

रमधनिया घर के काम-काज में लग गई। बहुत काम था उसे,—घर का सारे दिन का काम इसी समय करना होता था।

लेकिन दातादीन ढुलमुलाता-ढुलमुलाता घर के अहाते से बाहर निकला और सीधा दबे-पाँव कल्लू चमार के घर की ओर हो लिया।

कल्लू बीमार था, खाट से लग गया था। आँखें उसकी गड्ढों में धँस गई थीं। दातादीन चौधरी पर उसकी नजर गई तो उसने उठने का प्रयास किया लेकिन वह उठ न सका, बोल न सका। कल्लू की चमारी कल्लू की खाट की पट्टी से लगी बैठी थी, रो रही थी।

आज तीन दिन से कल्लू की चमारी भूखी थी। कल्लू के बीमार हो जाने से न तो पिछली फसल में ही वह कुछ काम कर सका और अब सिल्लों के दिनों में भी उसकी चमारी कुछ न कर पाती थी। जब घर में एक दाना भी न था तो वह किसी तरह आज सिल्ला चुनने गई भी तो···बेहोश होकर गिर पड़ी बेचारी।

दातादीन ने अपनी धोती की फेंट खोली और उसमें बँधी दो रोटियाँ निकालकर कल्लू की चमारी से बोला,—"ले, इन्हें खाकर पानी पी ले।

चमारी ने एक बार कल्लू के मुख पर देखा, फिर दातादीन चौधरी की ओर और फिर चुपके से वह जौ-चने की दो मिस्सी-रोटियाँ उनके हाथ में दे दीं। दातादीन ही की तो रोटियाँ खाई थीं इन प्राणियों ने जीवन-भर। फिर संकोच कैसा?

दातादीन ने जो रोटियाँ दी थी वे वही थीं जो कुनिया उनके लिए सुबह बासी रोटी के बदले लाने को ले गई थी। दातादीन ने उस समय इन्हें चमारी के लिए धोती की फेंट में बाँध लिया।

दातादीन ने एक बार कल्लू की ओर फिर देखा। उसे लगा मानो उसमें प्राण नहीं थे। अन्तिम श्वास चल रहे थे। खड़े-खड़े दातादीन की आँखों में आँसू भर आए। कल्लू ने आज पहली बार दातादीन की आँखों में आँसू भरे देखे,—तब भी नहीं जब चन्दू जेल गया था।

दातादीन बोला फिर एक शब्द नहीं। चुपचाप कल्लू की झोंपड़ी से बाहर निकल आया। उसके पैर लड़खड़ाये-से जा रहे थे। वह धीरे-धीरे अपने घर की ओर बढ़ रहा था कि इतने में उसे चमारी के रोने की आवाज सुनाई दी!

दातादीन के पैर रुक गये,—वह समझ गया कल्लू चल बसा,—उसने यह बेरहम दुनिया छोड़ दी!

दातादीन ने घर जाकर कहा,—"कल्लू मर गया चन्दू की माँ!"

"कल्लू चमार? हमारा चमार।" एक दम धक्-सी रहकर मुनिया की दादी की जबान से निकला। उसके हाथ से पूनी छूट पड़ी, चर्खा रुक गया।

कुनिया अवाक् खड़ी रह गई, पत्थर की पुतली के समान।

रमधनिया की रोटी तवे पर ही जल-भुनकर राख हो गई, हाथ की लोई हाथ से छूट पड़ी। उसकी आँखों के सामने कल्लू और कल्लू की बीमारी की शक्लें आकर खड़ी हो गईं।

कल्लू की चमारी शुरू से ही बहुत प्यार करती थी रमधनिया को। कभी-कभी घण्टों बैठकर उससे दुख-दर्द की बातें कर जाया करती थी।

रमधनिया भी उसे गाँव की एक नेक औरत समझती थी,—प्यार करती थी।

"बहू ! कल्लू के घर में उसके कफ़न के लिए भी कपड़ा नहीं है," दातादीन ने लड़खड़ाती-सी जबान से कहा।

और रमधनिया को देर न लगी जब उसने कोठे में जाकर वह बुकचा खोल लिया जिसमें वह झुनिया की शादी के कपड़े जुटा रही थी। एक थान लम्दराज का अभी परसों ही उसने झुनिया के ओढ़नों के लिए मोल लिया था; वही थान उसने दातादीन को दिया।

दातादीन ने थान हाथ में लेकर एक बार बहू की ओर देखा और फिर एक आह भरकर वह मौन-का-मौन खड़ा रह गया—त्याग और तपस्या की देवी उसके सामने खड़ी थी। दातादीन का मस्तक झुक गया।

दातादीन ने चुपचाप उस थान से कफ़न फाड़ लिया और वह उलटे ही पैरों झपटकर कल्लू की झोंपड़ी पर पहुँचा।

आस-पास की झोंपड़ियों के चमार वहाँ इकट्ठा थे। कल्लू के कफ़न के लिए कानाफूसी चल रही थी ! कल्लू के नाते-रिश्ते में चाचा, भाई, भतीजे कई लगते थे, लेकिन कफ़न का पैसा कौन खर्च करे—कौन उसे जलाने का खर्च दे ?

दातादीन को देखकर सब इधर-उधर हो गए। कफ़न दातादीन ने उन लोगों को देकर अरथी तय्यार करने के लिए कहा।

कल्लू चमार की अरथी उठी और दातादीन ने उसे कन्धा दिया। दातादीन का साथी इस दुनिया से चल बसा उसकी मिट्टी को श्मशान तक पहुँचाना था,—और दातादीन कन्धा न देता,—यह दातादीन की आत्मा ने गवारा नहीं किया।

× × ×

पुराने पत्ते गिरते जा रहे थे। दातादीन के साथी धीरे-धीरे कम होने लगे। आज कल्लू भी चला गया। छूट गया बेचारा ज़िन्दगी की मुसीबत से,—दातादीन ने सन्तोष की साँस ली।

"कल्लू भी भला आदमी था बेचारा," झुनिया की दादी ने दातादीन की खाट के पास पीढ़े पर बैठते हुए कहा। "लेकिन धोखा दे गया चमारी को।"

दातादीन मुसकरा दिया झुनिया की दादी की बात सुनकर और फिर अपनी बुढ़िया के पिचके सूखे गालों पर दृष्टि डालकर बोला,—"लाचारी थी यह तो चन्दू की माँ! उसका बस जो नहीं था मौत पर! नहीं तो मौत को ज़िन्दगी बनाकर छोड़ता कल्लू। कितना प्यार करता था वह अपनी चमारी को!" इतना कहते-कहते दातादीन के सामने अपनी और कल्लू की जवानी के दिन आ गये। उसे चन्दू की माँ के पिचके-पिचके गालों पर जवानी का यौवन छितराया हुआ दिखलाई दिया, वही यौवन जिसकी हर बाँकी थिरकन पर दातादीन की हृदय-वीणा के तार झंकृत हो उठते थे,—बज उठते थे और मन मयूर बनकर नाचने लगता था।

"लाचारी को ही धोखा कहते हैं।" झुनिया की दादी ने गम्भीरता-पूर्वक कहा, परन्तु तुरन्त ही बुढ़िया के मुख पर मुसकान खेल उठी और वह हँसकर बोली,—"लेकिन मैं तुम्हें पहले नहीं मरने दूँगी,—यह याद रखना।"

दातादीन ज़ोर से खिलखिलाकर हँस पड़ा।

दातादीन के जीवन-प्रवाह में न जाने कितने प्रकार की लहरें आईं और चली गईं परन्तु उसका प्रवाह अभी चल रहा था। गति उसकी मन्थर अवश्य हो गई थी परन्तु उसमें रस था, शक्ति थी, उत्साह था, इच्छाएँ थी और था सहयोग प्रकृति की प्रगति में अपने जीवन और जीवन-निधियों का बलिदान देने का, त्याग करने का!

: ११ :

रमधनिया के जीवन में चन्दू आया जरूर, लेकिन दोनों की जिन्दगी के रास्ते अलग-अलग निकले। फिर भी क्या हुआ ? रमधनिया एक भारतीय नारी थी और शादी की मुहर उसके ऊपर चन्दू के साथ लग चुकी थी, समाज कहता था कि जिन्दगी उन डाकू के साथ नत्थी की जा चुकी थी, लिखी जा चुकी थी भगवान् के बहीखाते में। उसका यह फर्ज था कि वह जिन्दगी-भर उस नालायक पति-देवता की पूजा करे, उसके चरणों में मस्तक टेके, चरण-चेरी बनकर रहे, इसीमें उसकी गति थी, मोक्ष थी—धर्म यही सब कहता था।

और धर्मभीरु रमधनिया अपने उस निष्ठुर पति की निर्दयता के प्रति जागरूक होकर भी उसे छोड़ नहीं सकती थी। चन्दू के सम्बन्ध ने उसे केवल चन्दू ही नहीं दिया था—उसने दिया था दातादीन, उसने दी थी चन्दू की माँ और उससे मिली थी उसे भुनिया। वह दातादीन जो अपना सर्वस्व खोकर भी एक इन्सान था और अपने इरादों का मजबूत इन्सान था। वह चन्दू की माँ जिसने रमधनिया को सोने की डली के समान खरीदा, जहर की पोटली के समान ठुकराया और फिर दिल का टुकड़ा बनाकर सीने से लगाया था। वह भुनिया, जो आज रमधनिया की जिन्दगी की एक मात्र सुनहली किरण थी, बुझते के स्वप्नों की सुन्दर चितेरी। वही चितेरी थी भुनिया जिसकी आँखों के सामने रहने पर रमधनिया कभी काम करने में थकती ही नहीं थी; एक उत्साह थी वह जीवन की।

आज धानों का ढेर लगा हुआ था रमधनिया के घर पर। कई मन धान रमधनिया ने खोटकर फेंक दिए। रमधनिया ओखली पर बैठी धान सँवारती और भुनिया रमधनिया के सामने खड़ी ऊपर से मूसल पकड़कर चोट लगाने में साथ देती थी।

रमधनिया गाँव में सबसे अच्छा धान खोटती थी,—क्या मजाल

फाड़ा था,—क्योंकि वह जानती थी कि आदमी बदलता है। चन्दू की माँ के जीवन का परिवर्तन उसके सामने था और उस पर थी रमधनिया के पराक्रम की छाप।

चन्दू के जेल से छूटने की अवधि भी धीरे-धीरे किनारे से आ लगी। रमधनिया की ही भाँति चन्दू की माँ कभी कुछ कहती नहीं थी इसके विषय में, परन्तु दिन एक-एक उसने भी न जाने कितने-कितने वर्षों के समान काटे थे।

बस, एक दातादीन ऐसा था कि उसके दिल में जलन थी चन्दू के प्रति और कुछ नफ़रत भी। क्या पता वह भी चन्दू के सामने आने पर काफ़ूर हो जाती। लेकिन उसने कभी बात नहीं की चन्दू के विषय में। कभी चन्दू की माँ ने बात चलाने का भी प्रयत्न किया तो दातादीन ने उसे रोक दिया। दातादीन के दिल में एक दर्द-सा उठने लगता था चन्दू का नाम सामने आते ही। उसे क्रोध भी आ जाता था कभी-कभी।

वह सोचता था कि न जाने उसके किस जन्म के दुश्मन ने उसके घर में जन्म लिया था। दातादीन का मान, उसकी मर्यादा, उसके खान्दान की इज़्ज़त,—सब मिट्टी में मिला दी चन्दू ने।

कभी-कभी दातादीन सोचता ही रहता बहुत देर तक साहूकार के बेटे और चन्दू को सामने खड़ा करके अपने ख़याल की दुनिया से। दोनों ने ही दातादीन से कर्ज़ वसूल किया और बाद में उसकी इज़्ज़त पर भी हाथ साफ़ किया।

उनका कर्ज़ था,—वह लेते। इस जन्म का भी लेते और पिछले जन्म का भी,—लेकिन उन्हें दातादीन की इज़्ज़त के साथ खेल खेलने का अधिकार नहीं था।

और यह विचार मन में आते ही दातादीन तिलमिला उठता। बुढ़ापे में भी उसकी नसें फड़कने लगतीं और उसे लगता कि मानो उसका सम्बन्ध खो गया,—वह खाने के लिए इस दुनिया में आया था।

चन्दू के जेल से छूटने के दिन करीब आते जा रहे थे परन्तु

दातादीन के मन में कोई उमङ्ग नहीं थी, कोई उत्साह नहीं था।

रात को जब दातादीन खाना खाने बैठा और थाली में बाजरे की खिचड़ी गर्म-गर्म लाकर भुनिया ने सामने रखी तो भुनिया की दादी भी पास को खिसक आई।

अपने बूढ़े दाँत-मुँह का मुसकराता हुआ आला-सा खोलकर साहस बटोरते हुए बोली,—"अब तो तुम्हारा नालायक चन्दू भी आने वाला है।"

दातादीन कुछ न बोला। सुना,—और चुप रह गया। गरदन नीची ही किये खिचड़ी खाता रहा,—मानो कुछ सुना ही नहीं उसके कानों ने।

चन्दू की माँ ने फिर कहा,—"सिर्फ पच्चीस दिन और रह गये हैं चन्दू के……"

"चन्दू न आये तो अच्छा है चन्दू की माँ! मुझे घबराहट हो रही है यह जानकर कि आ रहा है। मैं डरता हूँ कि कहीं वह आकर मेरी दस दस साल की कमाई हुई शान्ति को न खो दे,—आज सिर्फ यही मेरी जिन्दगी का आखिरी सहारा है," और इतना कहकर दातादीन ने एक लम्बी-गहरी साँस ली। एक उथल-पुथल-सी मची हुई थी उसके जीवन में, एक विचित्र परेशानी-सी।

भुनिया ने दादी-बाबा की ये बातें चुपके से सुनीं तो वह अपने को न रोक सकी। माँ के पास चूल्हे के सामने बैठकर चूल्हे में जलते हुए कण्डे को आगे सरकाकर धीरे से बोली—"माँ, दादी कह रही हैं कि चन्दू बीस-पच्चीस दिन में छूटकर आ जाएँगे, क्या सच है यह?"

"हाँ सच है बेटी।" हाथ की रोटी हाथ में ही रोककर रमधनिया ने कहा।

भुनिया को कुछ अजीब-सा लगा। उसने दादी, बाबा और अपनी माँ के चेहरों पर देखा तो कुछ कुछ भी अन्दाज न लगा सकी। एक पीड़ा थी गहरी और व्यापक पीड़ा थी जिसके जीवन में पुत्र-स्नेह और पति-भक्ति ने मुँह छिपाया हुआ था,—परन्तु था वह उत्साह विहीन।

भुनिया कोई और प्रश्न आगे न पूछ सकी। वहाँ से उठकर वह सीधी अपनी गाय के पास चली गई और उसका मुँह अपनी गोद में लेकर उसकी चारे की नांद पर बैठ गई। उस पर प्यार का हाथ फेरती रही और सोचती रही अपने मन में अपने बापू के प्रति,—कैसा आदमी है वह भी। दस साल के बाद जेल से आ रहा था और फिर भी उससे मिलने का, उसका मुँह देखने का, उसे प्यार करने का, कोई उत्साह नहीं,—उसके माँ-बाप में नहीं, उसकी औरत में नहीं और उसकी बेटी वह तो मानो कुछ जानती ही नहीं उसे। वह तो केवल यही जानती थी कि वह चन्दू डकैत की लड़की थी, दातादीन मजदूर की पोती थी और आँखों का तारा थी रमधनिया की जिसने अपने जीवन का सर्वस्व खोकर केवल उसे ही पाया था।

"इतने रूठ गये अपने चन्दू से?" चन्दू की माँ ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"मुझे रूठने लायक भी नहीं छोड़ा चन्दू ने,—चन्दू की माँ! भेड़-बकरी की जिन्दगी काट रहा हूँ यहाँ इस सड़े हुए जोहड़ के किनारे गाँव से बाहर पड़ा,—बस इससे आगे श्मशान है।" इतना कहते-कहते दातादीन का हाथ थाली की खिचड़ी में ही मानो धँसकर रह गया। वह जाम-सा हो गया। उसने फिर चन्दू की माँ की ओर देखकर कहा, —"चन्दू की माँ, तेरा कहना तो कभी मैंने गिराया नहीं जिन्दगी में। अब भी जो तू कहे मैं करने को तैयार हूँ।

"तू सच जान मैं तेरे कहने से एक इञ्च भी इधर-उधर जाने वाला नहीं।"

दातादीन की आवाज इस समय भारी हो रही थी,—चन्दू की माँ ने महसूस किया कि मानो कोई उसके गले को दबा रहा था।

भुनिया के कान यहीं थे, बड़े ध्यान से सुन रही थी वह इन दोनों की बातें।

"तो, एक बार मेरा कहना और मानकर अपने चन्दू को लिवा

दातादीन के हाथों पिटता और अपने आँचल में छिपता हुआ चन्दू देखा, उसने घर से भागकर छै दिन बाद लौटता हुआ चन्दू देखा, उसने रमला और कन्नू के साथ बीड़ी सुट्टयाता हुआ चन्दू देखा, उसने पुलिस द्वारा पकड़ा जाता हुआ चन्दू देखा, उसने जमानत पर छूट कर आता हुआ *चन्दू देखा, बस फिर उसने चन्दू को नहीं देखा,—चन्दू को फिर देखने* की ही तो लालसा इस समय माँ के हृदय को पीड़ा बनी हुई थी।

झुनिया ने यह दृश्य आज पहली बार जिन्दगी में देखा था। वह बेचैन थी कुछ जानने के लिए। गाय की नाँद से उतरकर धीरे-धीरे अपनी माँ के पास गई तो वह देखती ही रह गई।

रमधनिया का चूल्हा बुझ चुका था। तवे की रोटी तवे पर ही पड़ी-पड़ी सिकी, कुछ जली और सूखकर खपर-सी बन गई थी। परात का चून ज्यों-का-त्यों रखा था। हाथ की लोई हाथ से छूट गई थी। रमधनिया रो रही थी।

झुनिया कुछ पूछना चाहती थी परन्तु माँ को रोती देखकर उसका हृदय उमड़ आया। अब इतनी अनजान नहीं थी वह। अपनी माँ की दिक्कतों और परेशानियों का उसे ज्ञान था। उसने माँ का प्यार से—आदर से—हाथ पकड़कर कहा,—"माँ, तू यहाँ से उठ जा और पीढ़े पर बैठ। आज घास खोदते-खोदते बहुत थक गई है, मैं अभी सब रोटियाँ सेक देती हूँ।"

और सचमुच उसने अपनी माँ को गोद-सी मे भरकर एक ओर उठा लिया। माँ की चार हड्डियों को फूल की तरह उठाकर पीढ़े के ऊपर रख दिया झुनिया ने और चूल्हे में झब्बे सरकाकर आग जला दी।

दातादीन बूढ़ा जरूर हो गया था लेकिन उसकी नजरें चारों ओर काम करती थीं। घर में घटने वाली छोटी-से-छोटी घटना पर भी उसकी पूरी नजर रहती थी।

रमधनिया का भारी मन और रोना उसने देखा और अपने को सम्भालकर बोला,—"बहू! रो मत तू! तेरा भाग्य दातादीन नहीं

बदल सकता,—वह लाचार है। लेकिन उस पाजी को जेल से लाकर एक बार मैं फिर तुम लोगों के हवाले कर दूँगा। मगर सम्भाल सको तो सम्भाल लेना, तुम सास-बहू मिलकर,—लेकिन मुझे कोई उम्मीद नहीं, माता नहीं। आदमी पर सोहबत का असर होता है और उसकी सोहबत खराब हो चुकी है।

"जब वह जेल गया था तो सिर्फ रमला और दन्नू की ही सोहबत मिली थी उसे। लेकिन अब तो डाकुओं के सरकारी घर में से आ रहा है वह। भगवान् ही जाने क्या गुल खिलाता है आकर!"

दानादीन की बात सबने सुनी और सब मौन हो गये। साँप सूँघ गया सब को। पन्नू के सचमुच सुधर गये होने इस पर किसी को विश्वास नहीं जमता था।

वह दिन भी आ गया जब जेल से पन्नू छूटने वाला था। रमधनिया ने बड़े-ही-लाड़ के गेहूँ चने की पानी के हाथ की रोटियाँ, नमक डालकर सेंकीं और उनके बीच में रख दिया कैरी का अचार। अचार की चार फाँक रमधनिया ने मुनिया के घर से रात को ही मुनिया को भेजकर मँगवाली थीं। एक गुड़ की डली भी रोटियों के साथ बसने में बाँध दी, धमक से, कहीं खिसक न जाय।

और दानादीन भी भोर के तड़के उठा और कुरता गले में डाल, चादर कन्धे पर रख, लाठी हाथ में ले ली। मुनिया ने बसने में बाँधी रोटियाँ दानादीन के हाथों में लाकर दीं और वह सवेरे-ही-सवेरे [illegible] पास वाले रेल के स्टेशन की ओर हो लिया।

दानादीन का गाँव रेल के स्टेशन से चार कोस के फासले पर था। रेल सुबह सात बजे छूटती थी परन्तु वह तो स्टेशन पर साढ़े पाँच बजे ही पहुँच गया।

रेल आई और उस पर सवार हो गया अपने जिले के शहर का टिकट लेकर। शहर वह पहले भी कई बार गया था, लेकिन आज उसके पैर न जाने कैसे हो रहे थे। उसे कँपकँपी-सी महसूस हो रही थी मानो

बढ़ते। स्टेशन पर रेल से उतर कर तीसरे दर्जे के मुसाफिरखाने के दरवाजे से बाहर निकलकर ताँगों के अड्डों पर पहुँच गया। ताँगे वाले विभिन्न स्थानों पर चलने की आवाजें लगा रहे थे, परन्तु जेल की ओर जाने वाला एक भी ताँगा नहीं था। जेल थी भी बहुत दूर,—शहर से चार मील दूर जंगल में।

दातादीन पैदल ही जेल की सड़क पर बढ़ चला तो पता चला कि कैदी शाम को चार बजे छूटेंगे। वह दरवाजे से आधा फरलाङ्ग दूर ही एक शीशम के पेड़ के नीचे बैठ गया,—बैठ नहीं गया, लेट गया वह अपनी चादर का सिरहना बनाकर सड़क के किनारे पर,—थक गया था वह चलता-चलता।

दातादीन यहाँ जेल पर चन्दू को लेने आया था परन्तु उसका शरीर एक मशीन की तरह काम कर रहा था,—वह चकित था चन्दू की माँ की मनोकामना द्वारा, रमचनिया की उत्सुकता द्वारा और भुनिया,—उसने तो बाबा से कोई बात नहीं की इस विषय में।

और सभी तरह की बातें करती थी अब भुनिया दातादीन से—दातादीन के दुःख-दर्द की बात, दातादीन के बचपन, जवानी और बुढ़ापे की बात, दातादीन की हिम्मत और उसके साहस की बात, दातादीन के यश और गौरव की बात, परन्तु अपने बापू की चर्चा उसने कभी नहीं चलाई दातादीन से।

चन्दू के विषय में अब उसे सभी कुछ-पता था, वह सब जान गई थी। अपनी माँ को पिटती देखा था भुनिया ने उस क्रूर व्यक्ति के हाथों,—वह घटना वह भूल नहीं सकती थी। उसकी दादी माँ को लात मारकर गिरा देना भी भुनिया के जीवन की सच्ची घटना थी,—जो देखी थी उसने, सुनी नहीं। रही दातादीन की बात,—सो भुनिया तो सचमुच दातादीन को ही अपना बाप मानती थी और उसे गर्व था अपने बूढ़े बाबा पर। जहाँ चन्दू की बेटी अपने को कहते उसकी गरदन लज्जा से भुक जाती थी वहाँ दातादीन की पोती होने का उसे गर्व था और

उसकी माँ रमधनिया,—उसकी तो वह पूजा करती थी अपने मन-मन्दिर की देवी के समान।

दातादीन का बदन थककर चूर-चूर हो गया था,—दस कोस पैदल चलने और रेल के सफर से। थोड़ी देर इसी तरह लेटा रहा तो कुछ शरीर में जान आई। हवा भी लगी वहाँ ठण्डी-ठण्डी। दातादीन ने दाँई ओर देखा तो एक छोटा-सा बगीचा लगा था वहाँ। बगीचे के बीच में एक ढेंकली थी। दातादीन धीरे-धीरे उधर बढ़कर ढेंकली के पास पहुँच गया।

माली के लड़के ने सहानुभूति से पूछा,—"पानी पीओगे बाबा!" और उसने पानी पिलाया दातादीन को,—हाथ-पैर भी धुलाये। दातादीन नतने में बँधी रोटियाँ लेकर खाने बैठा, तो खायी नहीं गई उनसे। हाथ का टुकड़ा हाथ में और मुँह-का-मुँह में फँस गया।

दातादीन की दशा देखकर माली का लड़का बोला,—"बाबा, तुम्हारा कोई आदमी आज छूटने वाला है क्या जेल से?',

"हाँ बेटा!" भारी आवाज से दातादीन ने उत्तर दिया।

दातादीन रोटी न खा सका। उसने ज्यों-की-त्यों वे रोटियाँ नतने में बाँधीं और चादर में लपेटकर कन्धे पर डाल लीं। फिर चल दिया जेल के दरवाज़े की ओर।

एक उत्सुकता अनजान में न जाने क्यों पनपती जा रही थी दातादीन के मजबूत दिल में,—उसे दिखलाई दिया कि चन्दू उसकी आँखों के सामने खड़ा था। जेल का दरवाजा खुला और चन्दू वाकई उसके सामने था,—उसका स्वप्न साकार हुआ।

न लटा, न घटा, सेहत वैसी ही जैसी जेल जाते समय थी। चेहरे पर मुसकराहट थी, वह दातादीन को देखकर कुछ मलिन-सी हो गई, फीकी पड़ गई। चन्दू को विश्वास नहीं था कि दातादीन जेल पर उसे लेने आएगा।

चन्दू नाटक-सा खेल गया आज फिर दातादीन के साथ; दहाड़

मारकर रो पड़ा,—आँसू भी फूट-फूटकर गिर रहे थे उसकी आँखों से। दातादीन पिघल गया,—मोम बन गया उसका दस वर्ष से फूट-फूटकर मज़बूत बनाया हुआ दिल। बेटे के प्यार ने ज़ोर पकड़ा और वह उभर कर दातादीन के हृदय पर छा गया, मन पर छा गया और नेत्रों में स्नेह बनकर छलछला आया।

चन्दू आगे बढ़ा तो दातादीन के पैर आप-से-आप उस ओर खिंच गए, उसका बूढ़ा शरीर उठ चला उस ओर और हाथ फैल गए,—भर लिया उन्होंने अपने बीच चन्दू को,—अपने हृदय की बिछुड़ी हुई ममता को। शब्द दातादीन की ज़बान पर एक न आया।

: १२ :

चन्दू की माँ आँखें पसारे बैठी थी अपने चन्दू के लिए। रोटी आज वह तमाम दिन न खा सकी। चर्खा कातने में भी मन नहीं था। रमघनिया भी आज जंगल को नहीं गई। भुनिया और रमघनिया ने मिलकर पूरा कोठा और छप्पर लीपे थे और बाहर का चौक भी।

यह सब स्वागत में था चन्दू के। चन्दू लाख बुरा था लेकिन चन्दू की माँ का वह बेटा था,—वह उस पर आज भी प्राण न्योछावर कर सकती थी; रमघनिया का वह पति था,—उसके लिए वह देवता था और वह देवता, जो दस वर्ष के लिए उससे रूठकर जेल चला गया था, आज फिर उसके दर्शन के लिए आ रहा था, भुनिया का वह बाप था और भुनिया नहीं जानती थी कि उसका उसके प्रति क्या कर्तव्य था। एक उत्साह आज अवश्य था तीनों प्राणियों के मन में। वे प्रति क्षण चन्दू को साथ लिए दातादीन के आने की प्रतीक्षा में थे।

रमघनिया ने खाना बनाकर चौका साफ़ कर दिया और अब वह अपनी खाट के ही पास कपास ओटने की चरखी लेकर बैठ गई थी। खाना आज उसने भी नहीं खाया। भुनिया घर लिपवाकर भुनिया बुआ के पास चली गई थी।

सम्भाल लिया चन्दू ने भी ।

रमघनिया वहाँ से हटकर कोठे की दीवार के पास दीए के नीचे जाकर खड़ी हो गई थी पहले ही ।

झुनिया मुनिया से सटी हुई खड़ी यह दृश्य देख रही थी ।

शब्द किसी की जबान से कुछ न निकला । केवल नेत्रों की भाषा में ही कुछ कहा-सुना गया और समझा भी नेत्रों की ही भाषा में ।

सबको रोते देखकर झुनिया भी रुँआसी-सी हो गई,– उसका बाप दस वर्ष बाद उसकी नज़र के सामने आया था । न सही चन्दू की *ज़िन्दगी से उसका कोई सम्बन्ध लेकिन एक छोर तो बँधा था उसके साथ* झुनिया का,—वह उसका बाप था,—उसीकी लड़की कहकर उसे पुकारा जाता था गाँव-बस्ती में ।

गाय और बछड़े ने भी यह दृश्य देखकर ब्यार खाना बन्द कर दिया । नवागन्तुक की ओर दृष्टि पसारे देख रहे थे ।

चन्दू ने यह नया घर देखा, नया साजो-सामान देखा, नया रहन-सहन देखा,—कुछ घबराया, कुछ भौचक्का-सा हुआ, लेकिन धीरे-धीरे उसे सब-कुछ पता चल गया कि वह अब दो खेत के मालिक, घर और बैठक वाले दानादीन का बेटा नहीं था, वह तो गुदड़ के लड़के खुरपी हाथ में लेकर घास खोदने जाने वाले मजदूर का बेटा था ।

चन्दू को देखने कल्लू की चमारी आई, मुनिया का बाप आया रामू और, और भी गाँव के साथी तथा बड़े-बूढ़े आये । सभी ने सन्तोष ज़ाहिर किया, प्रसन्नता दिखाई ।

कुढ़न भी हुई कुछ लोगों को । साहूकार का बेटा तो आज घर से बाहर नहीं निकला भय के मारे,—किसी ने कह दिया था उससे कि चन्दू उसे खेत से आते ही जान से मारकर दम लेगा । उसके प्राण सूख रहे थे । जिन-जिन लोगों ने चन्दू के खिलाफ़ गवाही दी थी अदालत में, उनकी भी दशा कुछ खास अच्छी नहीं थी ।

चन्दू के वे साथी जो चन्दू के जेल चले जाने से लावारिस से हो

गये थे, चन्दू का मुँह देखकर उनमें जान पड़ गई,—पुराने सपने नये हो उठे। मूँछों पर ताव दिया सबने मिलकर और कसमें खायीं कि इन दस बरसों में जिस-जिस ने भी उन्हें सताया था, चिढ़ाया था, उससे मन के जी खोलकर बदला लेंगे,—उसके खेत उजाड़कर रख देंगे, उसके गाय-बैलों को नौ-दो ग्यारह करेंगे, उसके पैरों का अनाज गायब होगा, उसके जंगल में लगे बूँगों का भुस निकालकर बेच डालेंगे, उसके बिटौड़े फोड़ लेंगे, पेड़ काट लाएँगे और आखिर में उसके घर में कूमल फोड़कर भी उसका······मतलब यह कि उसे पूरा-पूरा मजा चखाया जाएगा।

आज इन सबने मिलकर रात को रमला के घेर में चौकड़ी की दावत रखी; जिसमें रमला, कन्नू और चन्दू के स्वागत का इन्तजाम था। ठर्रा शराब की आठ बोतलें भी मँगायी गई थीं ठेके से।

चन्दू इस दावत का मोह न छोड़ सका। अपने पुराने साथियों के बीच बैठकर सरदारी करने का लालच ही उसकी जिन्दगी थी। वह था भी वाकई सच्चा सरदार इस चौकड़ी का।

पुलिस ने लाख मार लगाई, बदन सुजा दिया मार-मारकर, लेकिन क्या मजाल जो चन्दू के मुँह से किसी भी साथी का नाम निकल गया हो! अपने साथियों की मुसीबत चन्दू, रमला और कन्नू ने अपने ऊपर ली थी और उसे दस साल तक निभाया।

घर से किसी तरह कन्नी काटकर चन्दू रमला के घेर में पहुँच गया। अपने सभी साथियों से छाती लगकर मिला,—शायद उससे ज्यादा स्नेह और प्यार के साथ जिससे कि वह दादादीन और अपनी माँ से मिला था।

यार-दोस्तों ने शाबाशी की बौछार की चन्दू पर और चन्दू गर्व से फूलकर कुप्पा हो गया,—लेकिन अन्दर-ही-अन्दर, क्योंकि दस साल की जेल-यात्रा ने कुछ संजीदा भी बना दिया था उसे।

"साहूकार के बेटे ने बड़ा भारी जुल्म किया।" एक ने कहा।

"मैंने चौथे ही दिन उसकी भैंस खुलवादी चन्दू!" गर्व के साथ

दूसरा बोला, "जोगीपुर के गूजरों को जरा इशारा किया और वे रात क
ही खोलकर ले गए।"

"बहुत ठीक किया तुमने," रमला कड़ककर बोला।

"उस पाजी का सिर तोड़ डालना चाहिए था," कन्नू ने कहा।

"कर तो हम सब-कुछ डालते भय्या, लेकिन सिर पर कोई सम्भा
लने वाला भी तो होता। तुम लोग तो जेल में बैठे थे," पहला गम्भी
रतापूर्वक बोला।

यह सचाई थी,—और इसके सामने सबका सिर झुक गया। चन्
ने इसे उनकी कमजोरी नहीं माना। वह गम्भीरतापूर्वक बोला,—"बचो
ठीक हुआ जो हुआ, लेकिन अब इस पाजी की जरूर खबर लेनी
होगी।"

"जरूर लेनी होगी," कन्नू कड़ककर बोला।

"जरूर लेंगे", रमला ने कहा।

"हम जो कहेंगे, सो करेंगे। कहने में देरी होगी, करने में नहीं,—
बस यही समझ लेना," कई ने मिलकर कहा।

और फिर जेल की कहानी छिड़ गई। रमला और कन्नू ने चन्दू
की जेल की सरदारी का किस्सा बड़े गर्व के साथ यार लोगों को सुनाया
और सबों ने कहकहे लगाकर उनके कारनामों की दाद दी—अक्षरा की
मुक्तकण्ठ से।

शराब का दौर चला और चलता ही गया।

रमला, चन्दू और कन्नू ने आज जी खोलकर शराब पी, जिसने दिन
की प्यास बुझाई।

दानादीन चन्दू को ले तो आया, लेकिन उसकी तजुर्बेकार निगाहें
चन्दू की चाल-ढाल का इम्तहान लेने पर लगी थीं। वह बराबर इस
बात को परखने का प्रयत्न कर रहा था कि वास्तव में चन्दू की आँखों से
जो आँसू बह रहे थे उनमें माँ-बाप के प्यार की कुछ गरमाहट थी?

घर की चहारदीवारी से चन्दू झिझक के द्वारे से निकला, दानादीन

ने यह भी देखा और फिर सर्दी की अँधियारी रात में, तमाम बदन दिन-भर के सफर और पैदल यात्रा में चूर-चूर हो जाने पर भी, चन्दू का रमला के घेर तक पीछा किया। उनकी बातें भी सुनीं और शराब का दौर चलता भी देखा।

लेकिन दातादीन एक शब्द न बोला। सीधा अपने घर चला आया। थोड़ी ही देर में चन्दू भी आ गया।

चन्दू के शराब पीने में यह खूबी थी कि उसे कोई ऊपर से देखकर पहचान नहीं सकता था और फिर चन्दू की माँ,—उसके पास फुरसत ही कहाँ थी आज यह पहचान करने की।

दातादीन की इस कदर चुप्पी चन्दू की माँ को खल रही थी। रमधनिया समझ रही थी कि अवश्य कुछ दाल में काला है। भुनिया भी दातादीन को चुप देखकर परेशान थी।

रात को सब खाना खाकर सो गए। कोई विशेष बातचीत किसी की किसी से नहीं हुई।

रमधनिया को आज रात-भर नींद नहीं आई। रमधनिया, भुनिया और चन्दू की माँ कोठे के अन्दर सो रहे थे और दातादीन तथा चन्दू कोठे के बाहर एक छप्पर में, जो इसी वर्ष कोठे के सामने डाल लिया था दातादीन ने।

चन्दू खर्राटे से पड़कर सो गया, मस्ती के साथ। जैसे वह कल सोया था उसी तरह आज सोया,—उसका चिन्ता से कोई सम्बन्ध नहीं था किसी किस्म का।

दातादीन ने सुबह-ही-सुबह उठकर कुरते पर अपनी बंडी पहनी और ऊपर से कन्धे पर गाढ़े की चादर डाल ली। फिर लाठी हाथ में सम्भाली और चल दिया सीधा जंगल की ओर अपने हाथ में घास खोदने की खुरपी लेकर।

रमधनिया ने उसी समय उठकर चक्की झोटी और साथ ही भुनिया भी माँ की सहायता के लिए पीढ़ा डालकर पिसवाने बैठ गई।

सवेरा हो गया और दिन निकल आया तो भुनिया की दादी ने भी खाट छोड़ी, लेकिन चन्दू अभी तक सोया ही पड़ा था। सूर्य-देवता उदय हुए और उनकी किरणें चन्दू के मुख पर पड़ीं तो कहीं जाकर उसने करवट बदली।

चन्दू आज मेहमान था, दस वर्ष बाद आया था लेकिन फिर भी भुनिया को चन्दू का यह ढंग देखकर आश्चर्य हुआ। उसने माँ से अकेले में पूछा,—"माँ, बापू इतनी देर तक क्यों सोता है ?"

"कल सफ़र में थक गया होगा बेटी !" रमधनिया ने कहा।

"लेकिन बाबा ने तो दोनों तरफ़ का सफ़र किया था माँ ?" भुनिया ने फिर प्रश्न किया।

"जवान आदमियों को ज्यादा नींद आती है भुन्नो ! तुम्हारे बाबा अब बूढ़े हो चुके हैं," रमधनिया ने जवाब दिया।

जवाब सुन लिया भुनिया ने लेकिन उसके मन को तसल्ली नहीं हुई। उसे लगा कि उसकी माँ उससे कुछ छुपाने का प्रयत्न कर रही थी।

बासी रोटी बन चुकी थी। दाताद़ीन की रोटी लेकर रमधनिया घर भुनिया के सुपुर्द कर, जंगल को चल दी। चन्दू इस समय भी सो रहा था और धूप उसकी खाट पर पूरी फैल गई थी।

रमधनिया रात को ही चन्दू की यह दशा देखकर ताड़ गई थी कि शराब पीकर आया था। फिर दाताद़ीन की गम्भीरता ने उसे और भी शंकित कर दिया था। चन्दू से वह भयभीत-सी होती जा रही थी,—उसे विश्वास नहीं था उस पर। इसीलिए वह भुनिया को घर की रखवाली के लिए छोड़ गई थी।

आज उसका विश्वास अपनी सास पर से भी उठता जा रहा था। वह डरती थी कि कहीं वह चन्दू के प्यार में उसकी पाँच वर्ष की मेहनत और तपस्या को नष्ट न कर दे।

उसे भुनिया की शादी करनी थी।

जो सामान उसने भुनिया की शादी के लिए तय्यार किया था चन्दू

उस सबके टके खरे करके एक बार यार-दोस्तों की दावत के बीच बैठकर शराब पीने का लुत्फ ले सकता था !

दातादीन आज जंगल गया तो जरूर, पर घास खोदने में उसका मन तनिक भी न लगा।

बैठा-बैठा कुछ सोचता रहा।

रमधनिया उसे आती दिखाई दी तो वह सकपकाकर उठा और बेतरह कह उठा,—"ताला खुला छोड़कर चली आई बहू ! तू अभी लौट जा, नहीं तो न जाने क्या-कुछ कर गुजरे वह नालायक।"

दातादीन के ये शब्द सुनकर, रमधनिया जड़वत् रह गई। भय उसे भी था इस बात का और इसीलिए वह भुनिया को आज घर पर छोड़ कर आई थी,—साथ ही उसे ताकीद भी कर दी थी अपने लौटने तक कहीं न जाने की।

"भुनिया है घर पर," रमधनिया ने कहा।

लेकिन दातादीन को लग रहा था कि यह भूल हुई। उसने पिछली रात का सब किस्सा रमधनिया को सुना दिया और यह भी जतला दिया कि वह आगे से होशियार रहे चन्दू की हरकतों से। साथ ही चन्दू की माँ को कानों कान भी किसी बात की खबर नहीं मिलनी चाहिए, यह भी दातादीन ने कहा।

गृहस्थी का जुआ दातादीन और रमधनिया के ही कन्धों पर था। दोनों प्राणी किसी तरह भुनिया और चन्दू की माँ को भी अपनी पीठ पर सम्भाले जा रहे थे। भुनिया की शादी का भी भार कुछ कम नहीं था। फिर इन सबके ऊपर चढ़ी गाँठने के लिए आ पहुँचे थे चन्दू देवता।

चन्दू की रात की हरकत देखकर एक बार तो दातादीन के मन में आया था कि उसे घर में ही न घुसने दे, लेकिन फिर वह न जाने क्या सोचकर चुप हो गया था। रह गया था खून का घूँट पीकर। चन्दू की माँ का बूढ़ा कमजोर दिल कहीं टूट न जाए, उसे यही भय था। चन्दू की माँ को दातादीन ने अपने हृदय में स्थान दिया था, उसकी खुशी में

अपनी खुशी और उसके रंज में अपना रंज समझा था। फिर दातादीन के बड़प्पन की भी चन्दू की माँ ने कद्र की थी और एक दिन वह रहा था, जब इनका सितारा बुलन्द था कि चन्दू की माँ ही चन्दू की माँ थी गाँव में। दातादीन आज भी अपना सब-कुछ बरबाद करना मंजूर कर सकता था लेकिन चन्दू की माँ के दिल में ठेस लगना उसे गवारा नहीं था।

रमधनिया ने तुरन्त घास की गठरी बाँध ली और दातादीन को खाने का बोहिया देकर सीधी गाँव की ओर लपकी। कुछ घबराहट-सी बढ़ती जा रही थी उसके भी दिल में।

जब रमधनिया घर के आँगन में पहुँची तो चन्दू खाट से उठ चुका था। वह बैठा था अपनी माँ के पास और माँ उसे समझा रही थी; कह रही थी,—"चन्दू ! तूने आज तक जो किया, सो किया; अगर तू आज भी कसम खाकर अपनी आवारा चौकड़ी छोड़ दे तो यह खानदान फिर उभर सकता है।"

"माँ, मैं अब कहीं भी नहीं जाऊँगा," उतरती-सी जबान से चन्दू ने कहा और चन्दू की माँ को यकीन आता जा रहा था अपने चन्दू पर। वह प्रसन्न थी कि जब यह सूचना दातादीन को देगी तो दातादीन प्रसन्नता से उछल पड़ेगा।

रमधनिया घास की गठिया नीह पर पटककर सीधी कोठे में चली गई। झुनिया वहाँ अकेली कपास ओटने की चर्खी लिए बैठी थी।

"तेरा बाप अन्दर कोठे में तो नहीं आया," रमधनिया ने पूछा।

"क्यों ? आया तो था। सभी चीजें भी देखी थीं उसने उलट-पलटकर," झुनिया स्वाभाविकता से बोली।

"हूँ !" रमधनिया ने कहा और फिर झुनिया के कान में चुपके से बोली, "अब ध्यान रखना आगे से। इन चीजों से उसका कोई सरोकार नहीं। मुझे तो काम करने जाना ही होगा जंगल-बाहर, लेकिन तुझे अब कहीं नहीं ले जाऊँगी। तेरा बाबा कहता था कि होशियार रहना।"

"होशियार रहना !" बड़े आश्चर्य से झुनिया ने कहा,—"लेकिन माँ ! किस से होशियार रहना ?"

"अपने बाप से, समझी ! नहीं तो किसी तरह अपनी हड्डियों को पेल-पेलकर जो थोड़ा-बहुत तौयल-तागा तेरी शादी के लिए जोड़ पाई हूँ उस सब को बेच-खोचकर शराब पी जायगा," रमधनिया ने बहुत ही गम्भीरता से कहा ।

झुनिया अब समझदार थी,—बच्ची नहीं रह गई थी वह । उसने अपनी माँ की पीड़ा को पहचाना और विश्वास के साथ कहा,—"तू फिकर न कर माँ, मेरे रहते यहाँ से बापू कुछ नहीं ले जा सकेगा ।"

फिर एक दम मुसकराकर रमधनिया बोली,—"कुछ तुझ से भी बोला तेरा बापू !"

"कहाँ माँ ! एक बार भी नहीं । कुछ भी तो नहीं बोला । एक तो उठा ही दिन चढ़े और फिर तभी से दादी-माँ के पास बैठा है । आज बड़ी-बड़ी बातें समझाई हैं दादी-माँ ने उसे । पूरी दस साल की कहानी भी रो-रोकर सुनाई है । पर माँ बापू ने तो हूँ-हूँ के अलावा कुछ कहा ही नहीं, बस बैठा-बैठा हँस रहा था,—मानो कुछ हुआ ही नहीं । हाँ, साहूकार के बेटे का नाम आने पर तो बलबला उठता था कभी-कभी ।"

रमधनिया मन में सब कुछ समझ रही थी । कोठे से बाहर आई तो चन्दू अपनी माँ के पास से उठकर कहीं चला गया था । रमधनिया भी गाँव की ओर गई और सीधी मुनिया के घर पहुँची ।

मुनिया खाना बना रही थी । उसने खाने पर से उठकर रमधनिया को पीढ़ा दिया और चूल्हे के पास ही बिठाया उसे । इससे पहले कि रमधनिया कुछ कहती मुनिया ही कह उठी,—'बहू ! एक बात सुन ले आज और गाँठ बाँध लेना उसको । चन्दू ने अपना रवैया बिलकुल नहीं बदला है । कल रात रमला के घेर में खूब शराब उड़ी है । कहीं ऐसा न हो कि एक-आध कौल-पत्तर और दो-चार लत्ते-कपड़े जो तूने

मुनिया की शादी के लिए जुटाए हैं, उन्हें भी यह बेब-सोच डाले। चन्दू सब-कुछ कर सकता है," सीने में एक दर्द लेकर मुनिया ने कहा।

रमघनिया की आँखों में आँसू आ गये यह सुनकर। वह ओढ़ने के पल्ले से आँखें पोंछकर बोली,—"ननदजी ! मेरा नसीबा ही फूटा हुआ है।" और फिर उसने कुछ न कहा। वह मौन होगई। मुनिया ने जो कुछ कहा था वह वही तो था जो दाताडीन से वह सुन चुकी थी।

मुनिया के पास रमघनिया एक ताला माँगने आई थी। ताला लेकर वह सीधी अपने घर चली गई। इस समय अधिक बातें करने का समय नहीं था उसके पास। रमघनिया को फिर जंगल जाना था।

: १३ :

चन्दू जेल से छूटकर गाँव में आ गया लेकिन उसे लगा कि मानो यह भी कोई उससे बड़ी भारी भूल हुई। मशक्कत वहाँ थोड़ी-बहुत जरूर करनी पड़ती थी लेकिन फिर आराम से सोना मिल जाता था,—मस्ती की छानता था चन्दू। लेकिन अब यहाँ गाँव में आकर सुबह-ही-सुबह दाताडीन के साथ खुरपी लेकर घास खोदने कौन जाय ?

दो दिन · चार दिन · छै दिन···आठ दिन—इसी तरह दिन चढ़े··· सोकर उठते, फिर इधर-उधर गाँव में टल्लेबाजी करते हुए मटर-गश्त करते, यार लोगों में बैठकर ताश और चौपड़ खेलते, जौ की खिंची शराब का सोमरस पान करते व्यतीत हो गये; पर चन्दू ने यह देखने की कोशिश नहीं की कि वह सुबह-शाम जो आराम से खाट पर बैठकर रोटियाँ तोड़ता है वह कहाँ से आती हैं ?

चन्दू का रौब था गाँव पर। उसकी लाठी में 'राम' बोलता था। उसकी मूँछों के तनाव में थरथराहट थी, उसकी आँखों की त्यौरी में कम्पन थी, उसकी चाल में दर्शकों का दिल दहलाने की शक्ति थी और उसकी गरदन के इधर-उधर घूम जाने से लोग प्रकम्पित हो उठते थे।

मुनिया का बाप रामू ज्योंही चौंतरे से नीचे उतरा तो चन्दू सामने

पड़ गया। चन्दू रामू की इज्जत करता था। उसने आगे बढ़कर कहा,—"काका, राम-राम !"

"राम-राम बेटा ! अच्छे तो हो चन्दू !"

"तुम्हारी मेहरबानी है काका ! सब ठीक ही है।"

रामू कहीं जाता-जाता रुक गया। न जाने क्या समझ में आ गई रामू के। चन्दू से बोला,—"आओ बेटा !" और दोनों फिर चबूतरे पर चढ़कर बिछी चारपाइयों पर बैठ गए।

बात रामू ने ही शुरू की,—"चन्दू तू अब बड़ा हो गया, कुछ बच्चा तो रहा नहीं जो तुझे समझाया जाय। अपने बाप और अपनी बहू की ओर देख। तेरी वजह से उन्हें कितना कष्ट सहना पड़ा,—और पड़ रहा है अभी भी। तू भी तो अपने फर्ज को पहचान।

झुनिया शादी के लायक हो गई। दातादीन बूढ़ा आदमी है। कहाँ-कहाँ वर खोजने जाय ? कुछ और नहीं करता तो कम-से-कम यही काम कर तू।"

चन्दू गरदन नीची किये सुनता रहा सब-कुछ। रामू काका के सामने वह कभी बोलता नहीं था। उसने रामू को विश्वास दिलाया कि वह अब घूम-फिरकर पहले यही काम करेगा और फिर राम-राम करके चल दिया।

कुछ ही दूर बढ़ा था कि सामने से साहूकार का बेटा आता दिखाई दिया। उसे देखते ही चन्दू के तन-बदन में आग लग गई। उसकी ओर को ऐसे झपटा जैसे माँस के छिछड़े पर गिद्ध झपटता है। साहूकार का बेटा चाहते हुए भी कि अपनी हवेली में घुस जाय, न घुस सका।

चन्दू ने कड़ककर कहा,—"क्योंबे कमीने ! आखिर दिखलाकर ही रहा अपनी जलालत। बेटा ! तेरे ही मगर चीर-फाड़कर टुकड़े-टुकड़े न उड़ा दिए तो हमारा नाम चन्दू नहीं।

तूने हमारा घर में रहना छुड़ाया है तो हम तेरा इस दुनिया से टिकट काट कर दम लेंगे।" और इतना कहकर चन्दू ने अकड़ के साथ

मूँछों पर ताव दिया।

"चन्दू भय्या ! तुम तो खामखा नाराज हो रहे हो मुझ गरीब पर।" गिड़गिड़ाकर साहूकार का बेटा बोला,—"यह सब जो-कुछ भी हुआ था मैंने थोड़े ही किया था। भला मैं भी कभी ऐसा कर सकता था ! सरकार के सामने पेश नहीं चलती। उलटी भी अपनी ही रखती है सरकार और सीधी भी। तुम्हें क्या बताऊँ कि दारोगा ने मेरा मार-मारकर पलस्तर बिखेर दिया,—कहा—चन्दू का नाम ले, चन्दू का नाम ले।

मैं मजबूर हो गया चन्दू भय्या, बिलकुल मजबूर; नहीं तो वह दारोगा का बच्चा मुझे हवालात में बन्द किये दे रहा था। बड़ा ही खौफनाक था वह काला शेख का बच्चा।"

चन्दू ने यह सुनकर एक लम्बी गहरी साँस ली और फिर कड़क कर बोला,—"बस बन्द कर बकवास। पाजी कहीं का ! तू बेवकूफ समझता है चन्दू को। चन्दू ने तेरे-जैसे न जाने कितने बदमाश देखे हैं।

"मेरे बाप, माँ और बच्चों को घर से निकालकर बाहर खड़ा कर देने के लिए भी तुझे पुलिस के दारोगा ने ही कहा होगा ?" और यह कहते समय चन्दू के दोनों नेत्र लाल अंगारों के समान दहक रहे थे। उसकी गरदन का तनाव बढ़ रहा था और लाठी पर हाथ की मुट्ठी बुरी तरह कसती जा रही थी।

चन्दू न जाने किस तरह अपने को सम्भालकर रह गया नहीं तो लाठी के एक ही हाथ में साहूकार के बेटे की खोपड़ी चकनाचूर कर देता। एक घृणा की दृष्टि वह उस पर डालकर आगे बढ़ गया,—बोला नहीं फिर एक शब्द भी।

साहूकार का बेटा चन्दू के आने की खबर सुनकर किसी रिश्तेदारी के गाँव में चला गया था और आज ही लौटा था वहाँ से।

चन्दू चला गया, लेकिन वह न टिक सका बहुत देर तक। उसे लगा उसकी खैर नहीं। उस गाँव में चन्दू से दुश्मनी करके रहना

उसके लिए मुश्किल था। कानून की मोटी-मोटी आँखें सब-कुछ नहीं देख सकतीं और पुलिस की लम्बी-लम्बी भुजाएँ हर समय उसकी रक्षा के लिए नहीं पहुँच सकतीं।

चन्दू यहाँ से सीधा रमला के घेर में गया। रमला ने लंगोट कसा हुआ था और वह तेल-मालिश कर रहा था।

चन्दू को आते देखकर बोला,—"उस्ताद अच्छे वक्त पर आए। आज दम ही नहीं भरा था। तीन सौ डण्ड और पाँच सौ बैठक लगा चुका हूं। लाओ तुम्हारी मालिश कर दूँ तो शायद कुछ दम भरे।"

चन्दू ने मुसकराते हुए कुरता उतारकर एक ओर खाट पर रख दिया और धोती भी। नीचे लाल लंगोट कसा हुआ था। क्या प्यारा बदन था चन्दू यार का,—रमला देखते ही मुग्ध हो जाता था। चन्दू के बदन के हर मसल में एक अजीब उभार था। पिंडली, रानें, सीना, बगलें, कन्धे, भुजाएँ सभी की मांस-पेशियाँ एक विशेष सौन्दर्य के साथ रमला के तेल लगाते ही दमदमा उठीं।

मालिश के बाद चन्दू ने एक फुरेरी-सी लेकर कुछ डण्ड और बैठकें भी लगाईं और फिर गरदन को अकड़ाकर इधर-उधर देखते हुए कहा, "अबे, सुना तूने रमला! वह साहूकार का बच्चा आ गया है।"

"आगया!" एकदम प्रसन्नतापूर्वक रमला ने उछलकर पूछा।

"हाँ आगया और अभी रास्ते में कम्बख्ती का मारा वह मुझे ही मिल गया। वह फटकार बतलाई मैंने बदमाश को कि खून पानी हो गया होगा।"

"उस्ताद चन्दू! अब तुम जो कह दो सो बना दूँ उस पाजी का। कह दो तो उसकी मदाक बनाकर गंगनहर के हवाले कर दूँ। फिर देखा जाएगा पुलिस-बुलिस का चक्कर पीछे से," स्वाभाविक सरलता से रमला ने कहा।

"इस नीच को इस तरह नहीं मारना है रमला! इसने बड़ा खून पिया है लोगों का। इसे तड़पा-तड़पाकर मारना है।" चन्दू खाट को

धूप में खींचकर उस पर बैठता हुआ बोला,—"लेकिन रमला ! स पूछे तो गाँव में रहने से तो जेल ही भली थी।"

"वस, तुमने मेरे मन की बात कह दी उस्ताद ! जो ऐश की ब तनती थी वह यहाँ कहाँ ? वहाँ काम करने के बाद रोटी की फिक्र नई रहती थी," रमला बोला।

"यह बात नहीं है वे रमला ! वहाँ शर्म की कोई बात नहीं थी। स लोग एक-जैसा ही तो काम करते थे। लेकिन यहाँ अगर मैं कल खुरप लेकर घास खोदने गया तो जानते हो यही पाजी साहूकार का बेटा क्य कहेगा ?—वह कहेगा—खुददा दी न घास हमने। बड़ा बनकर चला था जमींदार का बच्चा," और इतना कहते-कहते शर्म से चन्दू की गरदन झुक गई,—वह बोल न सका आगे।

चन्दू की दशा देखकर रमला एक देसी शराब की बोतल भुस के कूँगे में से निकाल लाया और सामने रखते हुए बोला,—"लो उस्ताद चन्दू ! थोड़ी पीकर गम गलत कर लो। ये दुनिया के झमेले तो चलते ही जाएँगे। जिन्दगी के साथ इन्हें भी चलना ही है, फिर फिक्र किस बात की !"

"फिक्र की कोई बात नहीं रमला ! लेकिन भुनिया की शादी का सवाल है।" बोतल में से आधा पाव शराब मिट्टी के सकोरे में डालकर एक-दो घूँट में ही हलक से नीचे उतारते हुए चन्दू ने कहा।

रमला जिस दिन जेल से छूटकर आया था उसकी नजर उसी दिन मुनिया पर पड़ी थी। बद नजर तो वह हो नहीं सकता था, क्योंकि उस्ताद चन्दू की लड़की थी भुनिया, लेकिन उसकी मस्त जवानी देखकर कुछ लालच अवश्य आ गया था रमला के मन में।

रमला और चन्दू बातें भी कर चुके थे खूब घुल-मिलकर इस विषय ने मौका देखकर कहा,—"उस्ताद चन्दू ! तुम सच जानो, तो हमें भी बेहद चिन्ता है।"

सहानुभूति के ये शब्द सुनकर उस्ताद चन्दू प्रसन्न हो गए

श्रौर उन्होंने रमला को भी झुनिया के लिए वर खोजने का कार्य सुपुर्द कर दिया लेकिन कह दिया साथ-ही-साथ कि उनके बाप दातादीन को कानों-कान सूचना न मिले कि वे लोग भी इस काम में उसे सहयोग दे रहे हैं।

इसके बाद चन्दू यहाँ से सीधा नहर की ओर गया और कपड़े किनारे पर रखकर गडाम से नहर में कूद पड़ा। खूब जी भरकर तैरा और नहाया—घण्टों नहाता रहा, बेफिक्री के साथ। पानी से निकला तो नहर के पुल पर उसकी दृष्टि गई। रमधनिया और दातादीन दो गठिया घास अपने सिरों पर लादे, उनके बोझ से दबे, बल खाते से तेजी के साथ गाँव की ओर बढ़ रहे थे। चन्दू चाहता तो फूल के समान दोनों गठरियों को उठाकर एक के ऊपर एक रख लेता, लेकिन वह कर न सका; उधर जा न सका; उनसे न बोल सका।

विचार चन्दू के मन में आता और चला जाता था। एक मस्ती थी उसकी जिन्दगी में,—जिम्मेदारी नहीं।

सन्ध्या को दातादीन की रामू से बातें हुईं तो उसने चन्दू की दिन की बातों का हवाला दिया। दातादीन मुसकरा दिया रामू की बात सुनकर और फिर बोला,—"रामू भय्या! अपने बछड़े के दाँत मैं खूब पहचानता हूँ। तूने समझाया, यह मेहरबानी है तेरी, लेकिन जहाँ तक विश्वास की बात है वह मेरा चन्दू से उठ चुका है। मुझे उसके हर काम में शराब की गन्ध आती है, नाक सड़ने लगती है मेरी। चन्दू अपनी माँ का बेटा है और उसकी माँ मेरी औरत है,—वह औरत है, जिसने जिन्दगी से पचपन साल निहायत ईमानदारी, मेहनत और प्यार के साथ दातादीन के साथ बिताए हैं,—बस, इसीलिए चन्दू को आज भी मेरे घर में सोने के लिए खाट, पहनने के लिए कपड़ा और खाने के लिए रोटी मिलती है,—मिलती ही रहेगी जब तक दातादीन दे सकेगा,—जब तक चन्दू की माँ कह सकेगी।"

रामू दातादीन की बात सुनकर चुप ही गया। चन्दू को रामू

ही कहा,—"लड़का खोजने की कोशिश करो चन्दू ! मैं तो कर ही रहा हूँ, जो मेरी ताक़त में है वह करूँगा।"

और चन्दू दूसरे दिन से वर की खोज में इधर-उधर निकल पड़ा। उसने निश्चय किया कि वह झुनिया के लिए कोई अच्छा वर खोज ही लेगा।

: १४ :

झुनिया बड़ी होती जा रही थी और उसकी शादी का कोई प्रबन्ध नहीं हुआ था। दातादीन टक्करें मार-मारकर थक गया, रामू ने अपनी सारी ताक़त लगा दी लेकिन किसी भाई-बिरादरी के खान्दानी आदमी ने पीठ पर हाथ नहीं रखने दिया।

चन्दू डकैत की लड़की थी झुनिया,—डकैत से रिश्तेदारी,—मुँह पर चाहे भले ही किसी ने कुछ न कहा हो लेकिन पीठ पीछे होंठ पिचकाकर इतना जरूर कहा,—"डकैत की लड़की का रिश्ता लेकर हम अपने खान्दान को दाग लगाएँ। जब सब रिश्ते मारे जाएँगे तो फिर सोच लेंगे डकैतों से रिश्तेदारी करने की।"

दस-दस साल की जेल काटकर आते हैं और बात करते हैं नवाब बनकर।

'घर-बार तो सब साहूकार ने कुड़क करा लिया है चौधरी ! देने-लेने को भी भगवान् का नाम ही मिलेगा इन महाशय के यहाँ, पास में बैठा उसका एक साथी कहता।

"फिर तू क्यों इस पचड़े में पड़े ? लाख में एक है तेरा बेटा। अभी परसों ही भीखनपुर का चौधरी आया था अपनी लड़की का रिश्ता करने। घोड़ी देने को कहता था लौंडे को, साथ में एक हजार रुपया भी और फिर सब बरातियों की मिलाई। अगले ने दस बासन तो चाँदी के बनवा रखे हैं दहेज में देने को। सात चीज़ सोने की और चाँदी की। चीज़ों का तो ढेर है बस।

चौधरी के साथ जो नाई आया था उसने सब बतला दिया है मुझे मुँह बनाकर एक चौधरी ने कहा।

और इसी तरह जहाँ भी मुनिया के रिश्ते के लिये गए, निराश लौटना पड़ा; कोई बात न बन सकी।

यों चन्दू के सामने कोई कुछ नहीं कहता था लेकिन मन से सब नफ़रत करते थे, सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहते थे।

दातादीन समझता था परेशानी को, वरना क्या कारण था कि वह मुनिया का रिश्ता न कर पाता। दातादीन के बूढ़े कान दूर और पीछे की बातें भी सुनते थे और उसका दिमाग़ महसूस करता था अपनी दिक्कतों को। उसका चन्दू ही दातादीन के रास्ते का रोड़ा था।

आज रामू से दातादीन ने साफ़-साफ़ कह दिया,—"रामू ! रिश्ता कोई कहाँ से ले ? नेकनामी क्या कम फैली हुई है बिरादरी में ? और फिर जो कुछ देने-लेने के लिए मेरे पास है, उसे भी सब जानते हैं। जो दातादीन अपना घरबार नहीं बचा सका साहूकार से, वह शादी में ही कहाँ से थ्योलियाँ उलट देगा लड़के वालों की झोद में।"

"थ्योली-वौली की तो इतनी जरूरत नहीं है भय्या जितनी चन्दू की बदनामी की है। असल बात तो यही है। लोग मुँह पर चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं और पीठ पीछे साफ़-साफ़ कह डालते हैं। कुछ-न-कुछ बहाना निकल ही आता है रिश्ता न लेने का," रामू ने भारी मन से कहा।

बहाना निकालना कौन मुश्किल है रामू ! जब कोई काम न करना हो तो लाख बहाने बन जाते हैं। किसी तरह गंगा नहा जाना चाहता हूँ रामू ! लेकिन मुझे दीखता है कि किसी दिन दातादीन इसी तरह इस दुनिया से चल बसेगा और………।"

"ऐसा, मत कहो दातादीन ! मुनिया तुम्हारी ही पोती नहीं, मेरी भी पोती है। तुम्हारे सामने मुनिया के हाथ पीले हो जाएँगे, फिकर न करो," ढाढ़स बँधाते हुए रामू ने कहा।

"रामू ! तेरा ही सहारा है मुझे अब इस बुढ़ापे में। इधर-उधर जाने से भी लाचार हो गया हूं। चन्दू अभी और दो साल जेल से न आता तो मैं झुनिया के हाथ पीले कर डालता। बात दबी-सी थी चन्दू की। लेकिन जब से यह आया है तो फिर बात ताजा हो गई है लोगों के दिलों में," दातादीन का मन इस समय बहुत ही भारी हो रहा था।

"तुम यह ठीक कह रहे हो दातादीन ! यही तो दिक्कत हो रही है रिश्ते में।"

दातादीन आज बहुत देर रामू की दुकड़िया में बैठा रहा। उसने अपने दिल की न जाने कितनी बातें कहीं और कहता ही रहा वह जब तक बैठा रहा। एक-के-बाद-एक, श्रृङ्खला बन गई बातों की।

रामू ने सब सहृदयतापूर्वक सुनी और सुनकर अपनी सहानुभूति का मरहम लगा दिया दातादीन के घावों पर।

जब दातादीन उठकर चला तो अंधेरा हो गया था। रामू के दुकड़िया से अपने घर को जाते समय रमला का घेर बीच में पड़ता था। दातादीन उधर से निकला तो चन्दू को उसने वहां जमा हुआ पाया। हाथ उठाकर, सीना तानकर, मूँछों पर ताव देकर बातें फरमायी जा रही थीं। जबान कतरनी (कैंची) के समान बेतहाशा चल रही थी। बड़े-बड़ों को मक्खी-मच्छर के समान समझकर बातें की जा रही थीं।

यह सब देखकर दातादीन के तन-बदन में आग लग गई। जी में आया कि पैर से फटी जूती निकालकर अभी इस चन्दू के बच्चे की शेखी खाक में मिला दे; लेकिन वह कर न सका। दिल में पैदा होने वाली जलन को दिल में ही समेटकर रह गया। अपना ही एक पली खून सुखाना उसने मंजूर किया लेकिन चन्दू से कुछ न बोला।

चुपचाप लाठी टेकता-टेकता घर पहुँच गया। झुनिया रोटी पो रही थी। रमधनिया कुट्टी काट रही थी, आज देर हो गई थी उसे जंगल से आने में। चन्दू की माँ आराम से खाट पर बैठी थी रजाई में, अपनी बूढ़ी हड्डियों को समेटे। हलकी-फुलकी बुढ़िया थी चन्दू की माँ, बाल सब

चौधरी के साथ जो नाई आया था उसने सब बतला दिया है मुझे। मुँह बनाकर एक चौधरी ने कहा ।

और इसी तरह जहाँ भी भुनिया के रिश्ते के लिये गए, निराश ही लौटना पड़ा; कोई बात न बन सकी ।

यों चन्दू के सामने कोई कुछ नहीं कहता था लेकिन मन से सभी नफ़रत करते थे, सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहते थे।

दातादीन समझता था परेशानी को, वरना क्या कारण था कि वह भुनिया का रिश्ता न कर पाता। दातादीन के बूढ़े कान दूर और पीछे की बातें भी सुनते थे और उसका दिमाग़ महसूस करता था अपनी दिक्कतों को। उसका चन्दू ही दातादीन के रास्ते का रोड़ा था।

आज रामू से दातादीन ने साफ़-साफ़ कह दिया,—"रामू ! रिश्ता कोई कहाँ से ले ? नेकनामी क्या कम फैली हुई है बिरादरी में ? और फिर जो कुछ देने-लेने के लिए मेरे पास है, उसे भी सब जानते हैं। जो दातादीन अपना घरबार नहीं बचा सका साहूकार से, वह शादी में ही कहाँ से थ्यौलियाँ उलट देगा लड़के वालों की झोंद में।"

"थ्यौली-वौली की तो इतनी जरूरत नहीं है भय्या जितनी चन्दू की बदनामी की है। असल बात तो यही है। लोग मुँह पर चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं और पीठ पीछे साफ़-साफ़ कह डालते हैं। कुछ-न-कुछ बहाना निकल ही आता है रिश्ता न लेने का," रामू ने भारी मन से कहा।

बहाना निकालना कौन मुश्किल है रामू ! जब कोई काम न करना हो तो लाख बहाने बन जाते हैं। किसी तरह गंगा नहा जाना चाहता हूँ रामू ! लेकिन मुझे दीखता है कि किसी दिन दातादीन इसी तरह इस दुनिया से चल बसेगा और.........।"

"ऐसा मत कहो दातादीन ! भुनिया तुम्हारी ही पोती नहीं, मेरी भी पोती है। तुम्हारे सामने भुनिया के हाथ पीले हो जाएँगे, फ़िकर न करो," ढाढ़स बँधाते हुए रामू ने कहा।

"रामू ! तेरा ही सहारा है मुझे अब इस बुढ़ापे में। इधर-उधर जाने से भी लाचार हो गया हूँ। चन्दू अभी और दो साल जेल से न आता तो मैं भुनिया के हाथ पीले कर डालता। बात दबी-सी थी चन्दू की। लेकिन जब से यह आया है तो फिर बात ताजा हो गई है लोगों के दिलों में," दातादीन का मन इस समय बहुत ही भारी हो रहा था।

"तुम यह ठीक कह रहे हो दातादीन ! यही तो दिक्कत हो रही है रिश्ते में।"

दातादीन आज बहुत देर रामू की टुकड़िया में बैठा रहा। उसने अपने दिल की न जाने कितनी बातें कहीं और कहता ही रहा वह जब तक बैठा रहा। एक-के-बाद-एक, शृङ्खला बन गई बातों की।

रामू ने सब सहृदयतापूर्वक सुनी और सुनकर अपनी सहानुभूति का मरहम लगा दिया दातादीन के घावों पर।

जब दातादीन उठकर चला तो अँधेरा हो गया था। रामू के टुकड़िया से अपने घर को जाते समय रमना का घेर बीच में पड़ता था। दातादीन उधर से निकला तो चन्दू को उसने वहाँ जमा हुआ पाया। हाथ उठाकर, सीना तानकर, मूँछों पर ताव देकर बातें फरमायी जा रही थीं। जबान कतरनी (कैंची) के समान बेतहाशा चल रही थी। बड़े-बड़ों को मक्खी-मच्छर' के समान समझकर दाबे को जा रही थी।

यह सब देखकर दातादीन के तन-बदन में आग लग गई। जी में आया कि पैर से फटी जूती निकालकर अभी इस चन्दू के बच्चे की चोटी खाक में मिला दे; लेकिन वह कर न सका। दिल में पैदा होने वाली जलन को दिल में ही समेटकर रह गया। अपना ही एक पत्री सूत सुझाना उसने मंजूर किया लेकिन चन्दू से कुछ न बोला।

चुपचाप लाठी टेकता-टेकता घर पहुँच गया। भुनिया रोटी पो रही थी। रमधनिया कुट्टी काट रही थी, आज देर हो गई थी उसे जंगल से आने में। चन्दू की माँ आराम से खाट पर बैठी थी रजाई में, अपनी बूढ़ी हड्डियों को समेटे। हलकी-फुलकी बुढ़िया थी चन्दू की माँ, बात सब

सफ़ेद, गालों में झुर्रियाँ, दाँत टूट चुके थे, लेकिन दाढ़ें सब बरकरार थीं—खूब काम देती थीं।

मुनिया ने दादी को खाट पर ही ले जाकर दे दी थी रोटी।

दातादीन भी आकर पास में पड़ी दूसरी खाट पर बैठ गया। कुछ बोला नहीं वह।

"चन्दू नहीं मिला कहीं," चन्दू की माँ ने दातादीन से पूछा।

"मैं चन्दू को ढूँढ़ने नहीं गया था चन्दू की माँ! तू उस नालायक का नाम मेरे सामने न लिया कर। क्या तू चाहती है कि मैं साल-छै महीने भी और न जी सकूँ,—अपनी मुनिया की शादी भी न कर सकूँ।"

दातादीन के हाथ-पैर काँप रहे थे।

चन्दू की माँ सहमी-सी रह गई यह बात सुनकर। उसके हाथ का टुकड़ा हाथ में और मुँह-का-कौर-मुँह में रुक गया; परन्तु वह बोली एक शब्द नहीं।

दातादीन अपनी गाढ़े की चादर सिरहाने से लगाकर धीरे से खटिया पर लेट गया। नेत्र बन्द कर लिये उसने। उसके हृदय की पीड़ा वही जानता था।

दातादीन के शब्द चन्दू की माँ के दिल में चुभ गये। बहुत गहरा घाव किया उन शब्दों ने। वह एक क्षण के लिए तिलमिला उठी। मन में आया कि कुछ कह डाले वह भी, उतना ही तीखा, बल्कि उससे भी अधिक तीखा, जितना दातादीन ने कहा था, लेकिन वह अपने को सँभालकर चुप हो गई।

दातादीन का मन व्याकुल हो उठा था। वह लेट भी न सका कुछ . । उठकर बैठ गया खाट पर और बिना यह समझे और देखे कि . की माँ से क्या कहा और उस पर उसका क्या प्रभाव हुआ ही दीन स्वर में बोला,—'चन्दू की माँ! अब तो मर जाना बस!"

चन्दू की माँ कुछ न बोली। उसी तरह हाथ का टुकड़ा हाथ में और मुँह का कौर मुँह मे लिए जड़वत् बैठी थी वह, परन्तु उसने महसूस अवश्य किया कि दातादीन के दिल पर गहरी ठेस लगी थी। दातादीन को चन्दू की माँ ने जिन्दगी भर परखा था। उसके दिल को ज़रा सा भी दुखाने के बजाय दातादीन अपने ऊपर बड़े-से-बड़ा सदमा सहन करने को तैयार रहता था। वे राज की बातें नहीं थीं चन्दू की माँ के लिए,—एक सचाई थी,—उसके जीवन की गहरी सचाई।

चन्दू की माँ ने मुँह का टुकड़ा अन्दर को सटकते हुए गम्भीरता-पूर्वक कहा,—"चन्दू के बापू ! बालकों की तरह नादान न बनो इस बुढापे में। क्या तू समझता है कि मैं चन्दू की नालायकी और तेरी मजबूरी को नहीं जानती ? लेकिन सब कुछ जानकर भी लाचार हूँ मैं, मजबूर हूँ। मैं माँ हूँ और तू बाप है,—बस फर्क इतना ही है। तू कहता है कि मैं भी तेरे जैसी कठोर बन जाउँ, तो बन जाती हूँ मैं। चन्दू आज से इस घर में कदम नहीं रख सकेगा।"

चन्दू की माँ के ये शब्द दातादीन ने सुने, रमधनिया ने सुने और झुनिया ने भी। घर का वातावरण एक दम गम्भीर हो गया, बहुत गम्भीर। ऐसा लगा, जैसे हवा भी वहाँ चलनी बन्द हो गई, उसका भी दम घुटने लगा।

"तू रूठ गई चन्दू की माँ !" दातादीन भारी मन से बोला। "लेकिन यह भूल है तेरी। चन्दू इस घर मे आवे-न-आवे इससे मेरा कोई सरोकार नहीं, तूने इतने दिन जिन्दगी के मेरे साथ गुजारकर भी मुझे कठोर दिल वाला कहा,—मुझे बस यही अफ़सोस है।"

फिर अचानक ही सबने देखा कि दातादीन मुसकरा रहा था। मानो कुछ हुआ ही नहीं। वह जानता था कि चन्दू की माँ ने जो कुछ भी उसे कहा, उसके पीछे एक माँ का दिल था, एक माँ की ममता थी। वह क्षम्य था सब कुछ,—कुछ था ही नहीं वह।

"झुनिया बेटी ! मेरी रोटी भी ले आ।" दातादीन ने चूल्हे की

और मुँह करके कहा।

भुनिया रोटी ले आई एक थाली में रखकर और दातादीन ने खाना शुरू कर दिया। रमधनिया गाय को सानी करने लग गई, लेकिन चन्दू की माँ उसी तरह मौन बैठी थी।

चन्दू की माँ ने महसूस किया कि उसने दातादीन को कठोर दिल वाला कहकर भूल की। दातादीन के दिल की नरमाई को तो उसने खूब परखा था और जी खोलकर परखा था। ऊपर से इस बूढ़े लुगड़ से शरीर वाले व्यक्ति का दिल अन्दर से कितना नरम था यह राज चन्दू की माँ से अधिक और किसी पर खुला हुआ नहीं था।

"तूने कह दिया बेटे के प्यार में चन्दू की माँ, जो न कहने की बात थी; लेकिन मैं यह जानता हूँ कि वह जो कुछ भी तेरी जबान से निकला वह तूने नहीं कहा। रोटी खा अब।" दातादीन रोटी का टुकड़ा तोड़ता हुआ बोला।

दातादीन के ये शब्द सुनकर चन्दू की माँ का भारी मन हलका हो गया। उसके सूखे हुए हलक में तरावट आ गई और उसका अकड़ा हुआ हाथ हरकत करने लगा। उसका मुँह भी चलने लगा और वह रोटी खा रही थी। दातादीन अपनी खाट पर बैठा रोटी खा रहा था और चन्दू की माँ अपनी खाट पर।

इसी समय चन्दू भी बाहर से आ गया, लेकिन बोला नहीं उससे कोई भी।

चन्दू को यह घर अब कुछ उखड़ा-उखड़ा लगता था। आनन्द उसे कुछ दिखाई ही न देता था यहाँ। किसी को उससे बैठकर बातें करने की फुर्सत नहीं थी। कभी-कभी अकेले में माँ से ही दो-चार बातें हो जाती थीं। मन उचाट सा रहता था हर समय चन्दू का। बस जी लगता था तो वहीं चौकड़ी के बीच,—जहाँ चन्दू सरदार था और यह उसका [illegible] है।

चन्दू मूर्ख नहीं था। वह जानता था कि उसके घर में उसका कोई

मान नहीं करता। यों प्यार चाहे उसे करते हो थोड़ा-बहुत अपना समझकर, लेकिन घृणा भी उनके मन में कम नहीं थी उसके प्रति। इस घर का हर प्राणी चन्दू के कन्धे पर जुम्रा रखकर उसे बैल की तरह जोतने पर तुला हुआ था और चन्दू एक ज़ोरदार बछड़े की तरह उस जुए को बराबर दूर-ही-दूर फेंकता चला जा रहा था।

सच यह था कि चन्दू को वह ज़िन्दगी पसन्द नहीं थी। जेल जाने से पहले वह जेल का नाम सुनकर कुछ भयभीत भी हो उठता था, पुलिस के नाम से भी काँप जाता था,—लेकिन अब तो वे सब मामूली बातें थीं उसके लिए। पुलिस से याराना भी हो गया था उसका। उसके पास बैठकर बीड़ी पी जाते थे पुलिस के सिपाही और अब कुछ मानने भी लगे थे वे उसे। दारोग़ा भी अब यूँ ही आकर अनर्गल बातें उससे नहीं करता था,—दस साल का सनदयाफ़्ता था वह,—भय भी लगता था उससे।

सरदारी छोड़कर मज़दूरी करने का ख्याल चन्दू का नहीं था। वह तो ज़िन्दगी को ऐश से 'काटने का हामी था,—चाहे वह जेल में कटे या जेल से बाहर। कोई फ़िक्र दिमाग में लेकर चन्दू ज़िन्दा नहीं रहना चाहता था। अपनी मस्ती में फ़र्क़ आने देना चन्दू को गवारा नहीं था,—चाहे कोई भला माने या बुरा। फ़र्ज़ नाम की चीज़ को वह बकवास समझता था,—नासमझी।

चन्दू से जब कोई कुछ न बोला और रोटी की भी बात न की तो वह फिर घर से बाहर निकल गया और सीधा कन्नू से जाकर बोला,— "अबे कन्नू! कुछ ढंग-ढौल बना या नहीं।"

"अभी तो कुछ नहीं बना उस्ताद!" कन्नू ने लाचारी ज़ाहिर करते हुए कहा।

"और रमला कहाँ गया है?" चन्दू ने पूछा।

"शहर से आने वाले रास्ते पर अड्डा जमा लिया है रमला ने उस आम के पेड़ के नीचे। कल पन्द्रह रुपया दे गया एक लाला

घिघियाकर,—और चार सेर पेड़े भी।" कन्नू ने सफलता के चिन्ह मुँह पर लाकर कहा।

"हूँ!" कहकर चन्दू फिर आगे कुछ नहीं बोला। जाने क्या सोचता हुआ चल पड़ा और घर आकर अपनी खाट पर लेट गया।

भुनिया ने वहीं खाट पर चन्दू को भी रोटी ले जाकर दे दी,—जैसी कुछ भी थी,—नाक-भौं सिकोड़ कर खा ली उमने,—लेकिन उसे यह खाना पसन्द नहीं था।

रोटी खाकर चन्दू वहीं सो गया,—चुपचाप, बिना एक शब्द भी किसी से बोले।

: १५ :

चन्दू को जेल से बाहर आकर पैसे की रोज़ाना जरूरत रहने लगी और उसे मिलता नहीं था कहीं से। कोई साधन नहीं था उसके पास। आज उसके मन में आया कि क्यों न वह भुनिया की शादी कहीं से रुपया लेकर कर दे। आखिर उसकी शादी भी तो दातादीन ने रुपया देकर ही की थी।

भाई बिरादरी की चन्दू को चिन्ता नहीं थी; उससे सम्बन्ध भी नहीं था कुछ उसका। वह अपनी ज़िन्दगी का मालिक था। जब उसने अपनी नेक सलाह रमला और कन्नू को दी, तो वे तो उछल पड़े प्रसन्नता के मारे और उन्होंने चन्दू के विचारों की दाद दी।

"तुमने बिलकुल ठीक सोचा है उस्ताद चन्दू! मैं तो पहले ही कहना चाहता था यह बात, लेकिन डरता था तुमसे कि कहीं तुम खुद-गर्ज न कह डालो अपने यार रमला को।" रमला ने कहा।

"इसमें खुदगर्जी की क्या बात है रे रमला! यह तो व्यवहार का देना-लेना है और फिर कानों-कान भी पता नहीं चलेगा किसी को। गुरके से आ जायगा रुपया।" कन्नू ने बात का समर्थन करते हुए कहा।

रमला और कन्नू ने मामला पहले से ही तय्यार कर लिया था।

वह तो लगे ही थे इस ताक-झांक में। केवल संकेत भर चाहते थे उस्ताद चन्दू का।

चन्दू ने इधर अपने घर में रमधनिया से भी कभी-कभी कुछ सहानुभूतिपूर्ण बातें कीं। झुनिया से भी बोला। और दातादीन से भी सलाह मशविरा करने बैठा। यह एक नाटक था जो वह रच रहा था पैसे के लिए। दातादीन उसको हर बात को शक की निगाह से देखता था। उसे विश्वास नहीं था चन्दू की किसी बात पर। पर झुनिया के लिए वर खोजने इधर-उधर जाने का भी एक भारी काम था, जिसे वह स्वयं नहीं कर पा रहा था।

आज रमधनिया ने चन्दू को अपने आप वह सब सामान दिखलाया जो उसने झुनिया की शादी के लिए तैयार किया था। अब पन्द्रह तीवलें हो गई थीं। पैरों के लिए झांवरें और कानों के छोटे-छोटे बुन्दे भी उसने बनवा लिये थे।

सन्ध्या को चन्दू ने दातादीन से जगतपुर में एक लड़का देखने की बात चलाई। उसने स्पष्ट कह दिया,—"कोई बड़ा पुराना घर नहीं है लेकिन लड़का तन्दुरुस्त और सुन्दर है। खेती करता है एक हल की। दो खेत हैं उसके पास, पन्द्रह बीघे (कच्चे) के। हर हालत में हमसे किसी तरह गिरी हालत नहीं है उसकी। कोई झंझट नहीं है किसी तरह का।"

दातादीन ने चन्दू की बात गम्भीरतापूर्वक सुनी और रामू को बुलाकर सलाह की। रमधनिया के सामने भी बात आई लेकिन वह राय ही इसमें क्या दे सकती थी।

आखिर रामू ही चन्दू के साथ लड़के को देखने गया। लड़का वाकई अच्छा था, सुन्दर था और कारबार भी बुरा नहीं था उसका। मेहनती किसान था, लेकिन पीछे कुछ खानदान में खराबी आ जाने से गाँव के लोग उड़ा देते थे रिश्ता लेकर आने वालों को।

गाँव में पूछ-ताछ से पता चला कि उसकी बुआ पर रुपया लिया था उसके बाप ने और यही वह दाग था उसके खानदान पर कि जिसके कारण आज उसका रिश्ता नहीं हो रहा था। केवल यही दोष था इस नौजवान लड़के का।

रामू ने पूरी छानबीन की और पूरे हालात दातादीन को जाकर बतलाये। खान्दान के दाग की बात दातादीन ने सुनी तो उसका माथा ठनका; लेकिन फिर भी उसकी दृष्टि जब अपने खान्दान पर गई और अपने चन्दू के कारनामे उसके सामने आये, तो उसने तुरन्त निश्चय कर लिया कि 'रुपया' लड़के को दे देना चाहिए। अधिक छानबीन के लिए उसके पास समय नहीं था। वह इस कार्य को जल्दी-से-जल्दी सम्पन्न करना चाहता था। अच्छा-खासा चलता-फिरता शरीर रहने पर भी इधर कई दिन से उसका विश्वास उठता जा रहा था, उसने, पता नहीं क्यों वह महसूस कर रहा था कि अब अधिक दिन की मेहमानी नहीं रह गई थी उसके शरीर को इस दुनिया में। वह किसी तरह झुनिया की शादी अपनी आँखों से देखना चाहता था।

रिश्ता निश्चय हो गया। लड़के को रुपया दे दिया गया। लड़का स्वयं कार-मुखत्यार था अपने घर का। कन्नू और रमला ने इस लड़के के खोजने में रात-दिन खाक छानी थी और सब निश्चय भी उन्हीं ने किया था। रुपया पूरा दो हजार निश्चय हुआ था जो पूरा-का-पूरा फेरे फिरने से पहले-पहले अदा कर देना था।

चन्दू को रमला और कन्नू ने सिर्फ पन्द्रहसौ रुपया बतलाया और बाकी पाँच सौ में इन दोनों का बराबर-बराबर हिस्सा था।

दातादीन के घर पर विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। गाँव में काना-फूँसी तो चली, लेकिन रमला और कन्नू ने बात का पता किसी को कानों-कान नहीं होने दिया।

झुनिया और रमधनिया बहुत प्रसन्न थीं। रामू भी शादी के काम

पर इस तरह जुटा था कि मानो उसकी अपनी लड़की की शादी हो रही थी। दातादीन कुछ अधिक दौड़-भाग करने योग्य न होने पर भी सब कुछ कर रहा था। न जाने कहां से जान आ गई थी उसकी बूढ़ी हड्डियों में। चन्दू की शादी से सत्तरह साल बाद यह शुभ दिन आया था दातादीन के घर।

गाँव के तमाशबीन लोग यह देखना चाहते थे कि दातादीन क्या कुछ करता है शादी में,—लेकिन दातादीन को आज चिन्ता नही थी किसी की। खास-तौर पर किसी की खुशामद करने का उसका विचार नहीं था शादी में शामिल होने के लिए। लड़की की शादी थी, एक फर्ज था जिसे वह पूरा करना चाहता था और देखना चाहता था कि भाई, बिरादरी, खान्दान, जिनकी नाक और नाम के लिए वह ज़िन्दगी भर मरा और मिटा था, उसके साथ क्या सलूक करते है !

ज़िन्दगी का आखिरी तजुर्बा वह करना चाहता था, इन्सानियत का। वह जानना चाहता था कि क्या उसमें जान बाकी है या वह मर चुकी।

चन्दू मस्ती के साथ सीना तानकर घूमता। शादी कर रहा था लड़की की,—खुशखरीद। यार-दोस्तों की दावत की थी उसने रमला के घर में,—छुपाकर दातादीन से। खूब शराब उड़ी और खूब रौनक रही। तमाम इन्तज़ाम कम्नू और रमला ने ही किया।

मुनिया के चबूतरे पर खड़े होकर रमला का घर साफ दिखलाई दे जाता था। उसने यह दावत देखी तो वहम-सा होने लगा उसे कुछ-कुछ। चन्दू कई दिन से खूब खर्च कर रहा था। बीड़ी का बंडल हर वक्त उसके कुर्त्ते की जेब में लटकता दिखाई देता था और रमला तथा कम्नू का भी रंग बदला हुआ था। सिर के पट्ठों में तेल और माँग कटी मुनिया ने देखी। फिर वर्दी भी तीनों की बदली हुई थी। फटे हुए कुर्तों के स्थान पर साफ़ मलमल के कुर्त्ते और धोतियाँ फाइन की।

आज चन्दू को मुनिया ने देखा तो वह मुण्डा जूता पहने था, चर्र-मर्र कर रहा था वह उसकी चाल के साथ-साथ गाँव के दगड़े में चलते हुए। गाल में पान भी दबा हुआ था।

मुनिया कुछ समझ न सकी इसका राज, लेकिन उसका दिमाग़ बदलता जा रहा था। चन्दू का यह रूप जब दादादीन और रमधनिया ने देखा तो उनका भी माथा ठनका और सिर चकराया, लेकिन विचार आया कि कहीं से रुपया पा गया होगा वह,—हो सकता है रमला इत्यादि के साथ कहीं जाकर लूट-खसोट की हो उसने, लेकिन यह न सोच सके कि यह इस बार का डाका चन्दू ने अपनी बेटी के ही बनने वाले घर पर डाला था।

मुनिया का मन बुरी तरह सशंकित हो उठा और वह रमधनिया से अपने मन की बात कहे बिना न रह सकी। उसने स्पष्ट कह दिया अकेले में रमधनिया को ले जाकर,—"बहू ! मुझे तो दाल में काला मालूम देता है। चन्दू चाल खेल रहा है और यह रमला तथा कन्नू का जरूर कोई जाल है जिसमें चन्दू फँस गया है।"

वह बाप जिसने बच्चा पैदा करने के पश्चात् आज तक कभी बाप-पन निभाया ही नहीं, आज उसका सौदा करके उससे सुन्दर पोशाक पहनकर अपना सामाजिक स्तर ऊँचा देखने का स्वप्न देख रहा था।

"कैसा जाल ?" आश्चर्य-चकित होकर रमधनिया ने पूछा।

रमधनिया मेहनती थी, घर और बाहर के काम की व्यवस्था करना उसे आ गया था, परन्तु आगे की बातों को परखने और जानने वाला दिमाग़ उसके पास नहीं था। इस तरह की बातों में उसे मुनिया का ही सहारा लेना होता था। "क्या जाल हो सकता है ननदजी ! मेरा दिल बैठा जा रहा है तुम्हारी बात सुनकर !" और रमधनिया काफी भयभीत हो उठी।

"घबराने की बात नहीं है बहू ! जो भगवान् को मन्जूर है वह

जरूर होगा। लेकिन कल से चन्दू, रमला और बन्नू का जो राग-रंग मैं देख रही हूँ, वह खाली राग-रंग नहीं है। मेरे खयाल से तो इन लोगों ने जरूर कुछ रुपया तय कर लिया है उस लड़के से, जिससे भुनिया का रिश्ता हुआ है।" बहुत गम्भीरतापूर्वक मुनिया ने कहा।

मुनिया के मुख से निकले हुए शब्द हल्के नहीं होते थे। उनमें वजन था, जान थी और रमधनिया के लिए तो वेद-वाक्य थे। कुछ समझने-सोचने का सवाल ही नहीं था उसके लिए। पूरा नक्शा खिंच गया आँखों के सामने। मलमल के कुर्ते और फाइन की धोती में सजा हुआ मुण्डा जूता पहने चन्दू उसकी आँखों के सामने साकार आकर खड़ा होगया। वह मुसकरा रहा था। एक अजीब अदा थी उसके मुसकराने में। उसने मूर्ख बनाया था दातादीन को, अपनी माँ को और लूटा था रमधनिया को, उसकी लाड़ली बेटी भुनिया को,—डाका डाला था उनके गत और भविष्य के जीवन पर।

रमधनिया शेरनी के समान तड़प उठी। उसकी आँखों की पुतलियाँ जलने लगीं, बलने लगीं। उसका स्वाँस-प्रवाह तीव्र हो गया। उसने मुनिया के मुख पर देखा, परन्तु बोल न सकी एक शब्द भी।

लेकिन वह नहीं होने देगी यह सब कुछ,—चाहे प्राण ही क्यों न देने पड़ें उसे अपने। उसने संकल्प कर लिया मन में। फिर अपने को सम्भालकर विनम्र भाव से बोली,—"ननदजी ! तुम्हारा ख्याल बिल्कुल ठीक लग रहा है मुझे। मैं पूरा-पूरा ध्यान रखूँगी कि किस तरह रुपया दिया-लिया जाता है और तुम भी मेरी मदद करना इस काम में। रिश्ता अब हो ही चुका है। बदला नहीं जा सकता इसे।"

"रिश्ता बदलने की जरूरत नहीं है बहू ! जरूरत इस बात की है कि ये लोग रुपया न पा सकें।" मुनिया ने कहा "बापू कहते थे कि लड़का हजारों में एक है। जरा-सा खान्दान को दाग लग गया है सो उससे क्या हुआ ? बाप-बेटे क्या सब एक से ही होते हैं ? जब ताऊ दातादीन के चन्दू जैसी औलाद पैदा हो सकती है तो अपनी लड़की

पर रुपया लेने वाले रमधनिया के बाप के घर रमधनिया भी पैदा हो सकती है,—खान्दान की आन, वह आन जिसकी आन के नीचे न जाने कितने युग-युगान्तर के लगे हुए दाग दबकर हमेशा के लिए खत्म हो सकते हैं।"

रमधनिया ने मुनिया की बात गाँठ बाँधली और इस बात को उसने अपने से बाहर न जाने दिया। वैसे आजकल चन्दू भी रमधनिया से बहुत मीठी ही बातें करता था; शायद उतनी मीठी, जितनी ज़िन्दगी में उसने कभी नहीं की थीं उससे; उस दिन भी नहीं जब दो जीवन एक साथ मिले थे,—वह तो मौन ही रह गया सब कुछ,—इस जीवन में अविकसित,—समाप्त।

मुनिया बान बैठी, हल्दी मली गई उसके बदन पर। यौवन वैसे ही इस समय उसका निखार पर था, पीली हल्दी के बदन पर मले जाने से उसमें और दमदमाहट आ गई। तमाम शरीर मानो सोने में मंढ़कर भेजा था विधाता ने।

मुनिया के हरदम मुसकराते हुए नेत्र, एवं अनोखे सौन्दर्य और आकर्षण की दमदमाती हुई छटा अपने कोटरों में भरकर मुसकरा रहे थे। विवाह की प्रसन्नता और अपने बाबा, अपनी दादी अपनी माँ से विछोह का अपार कष्ट एक साथ आकर उसके मानस में समा गये थे। सुख और दुःख का एक विचित्र समन्वय था; जिससे हृदय उमड़ता था और नेत्र आँसू छलकाते थे।

रमधनिया के घर रात को मुनिया की शादी के गीत गाये जाते थे और दताईदीन भी एक ओर घर के आँगन की बाहर वाली कच्ची दीवार से सटकर कुवें में अपनी खाट बिछाकर लेटा-लेटा वे गीत सुनता और प्रसन्न होता था। ऐसे गीत दताईदीन के कानों में कितनी ही बार पड़े थे, परन्तु इस मुनिया की शादी के गीतों में जाने क्या विशेष बात था कि उनका स्वर दताईदीन की आत्मा को छू जाता था। मुनिया की

दादी भी बहुत प्रसन्न थी।

आखिर वह दिन भी आ गया जब बारात आई। एक रथ, एक मॅंभोली और एक तांगा बस यही थी भुनिया की कुल बारात, लेकिन दूल्हा छबीला था भुनिया का। सारा गाँव रीझ उठा उसे देखकर। भुनिया के भाग्य की सराहना की गाँव की औरतों ने और मर्दों ने भी, जिस-जिसने देखा। रोष दिखाने वालों की संख्या भी थी, लेकिन बिल्कुल कम। गाँव के लड़के-लड़कियों को अधिकतर भुनिया का दूल्हा पसन्द ही आया। भुनिया की एक-दो सहेलियों ने जाकर भुनिया को गुदगुदाते हुए उसके दूल्हा के सौन्दर्य का बखान किया,—और भुनिया खो गई जीवन की एक नवीन कल्पना में,—अनजानी, अनदेखी-सी।

बारात की चढ़त हुई, मामूली बाजे के साथ। बाजा अंग्रेजी नहीं था, लेकिन एक गाँव का नफीरी वाला अच्छी नफीरी बजाता था। शादी का साकार स्वरूप खड़ा कर दिया उसने, देखने और सुनने वालों के सामने।

फेरों का समय रात को नौ बजे का था। बारात जनमासे में चली गई। रामू की दुकड़िया में बारात के ठहरने का प्रबन्ध किया गया था। दोलड़ों की बिछाई बिछवादी गई थी पहले से ही।

रात को बारात के पास रोटी का बुलावा पहुँचा। पन्द्रह आदमी थे बारात में जिनके लिए दानादीन ने कोटोजम की कचौड़ी चार-चार लड्डू और पेठे तथा आलू के साग का प्रबन्ध किया था। एक मीठी सोंठ भी बनवाई थी उसने।

चन्दू की शादी की ज्यौनार में तो दानादीन ने तश्तरियाँ कराई थीं और नाच-गाने का भी प्रबन्ध किया था पर भुनिया की शादी में वह यह सब कुछ न कर सका। करना वह नहीं चाहता था, यह बात नहीं थी,—आज भुनिया उसे लाख लड़कों से भी अधिक प्यारी थी। भुनिया जा रही थी, शादी होकर पराये घर,—यही कल्पना उसे

हिला देती थी,—झकझोर डालती थी उसके बूढ़े जर-जर शरीर को। परन्तु वह लाचार था। पराया ही धन तो पाला था दाउदीन ने।

बारात खाना खाकर जा रही थी और रात्रि ने भी अपना जाल बिछा दिया था सारे गाँव पर,—चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार। बारात जनवासे की ओर रवाना हुई तो उसके सामने-सामने दो मशालची रास्ता दिखलाते जा रहे थे।

बारातियों में खाने की लगभग सभी ने तारीफ की पर एक-दो बुरी तरह नाक-भौं भी सकोड़ रहे थे। कुछ कहा भी उन लोगों ने और वह दूल्हे ने सुना भी, लेकिन वह चुप रह गया अपना काज समझकर।

फेरों का समय निकट आया और उधर रमला तथा चन्दू में काना-फूँसी होने लगी। जनवासे के सामने चबूतरे के नीचे दीवार के सहारे अँधेरे में दोनों खड़े बातें कर रहे थे। कन्नू चबूतरे की सीढ़ी के पास नीचे की ओर खड़ा था। इसी समय नौशा चबूतरे से नीचे उतरा और वह कन्नू के साथ रमला तथा चन्दू के पास पहुँच गया। यहाँ से चारों रमला के घेर की ओर बढ़ चले।

मुनिया और रमधनिया इसी घात में लगी चबूतरे के बाँई ओर मुनिया के घर की दुवारी में खड़ी यह सब-कुछ देख रही थीं। रात्रि के अन्धकार में चुपके से कुछ दूर के फासले पर उन चारों के पीछे-पीछे ही हो लीं। वे रमला के घेर में पहुँचकर नीम के पेड़ के नीचे बिछी चारपाई पर बैठ गये और मुनिया के दूल्हे ने पन्द्रह सौ रुपये के नोट गिनकर चन्दू को दिये।

रमधनिया का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। वह कुछ देर तो समझ ही न सकी कि क्या करे। उसने देखा कि रुपया चन्दू ने सब हिफ़ाज़त से अपने कुर्त्ते के ऊपर वाली रेशमी पाकट की जेब में रख लिया और फिर वह वहाँ से विदा हो गया। दूल्हा जनवासे की ओर चला गया और चन्दू अपने घर को तरफ़। रमला और कन्नू ने वहीं के ही पेड़ के नीचे लेट लगाया।

शिकार मार लिया था उन्होंने, अपार हर्ष था उनके दिल में। मस्ती के साथ फिर दोनों ने, बीड़ियाँ सुलगाईं और शान से आसमान में धुआँ उड़ाते हुए एक-दूसरे से बोला,—"इसे कहते हैं उस्ताद ! उस्तादों पर भी हाथ साफ़ करना।"

"बस कमाल किया तुमने भी लेकिन हमने भी साथ देने में कुछ कसर नहीं रहने दी उस्ताद !" कल्लू ने कहा।

"मिल-जुलकर काम करने में बड़ी ताकत होती है उस्ताद !" कहकर रमला ने सन्तोष की साँस ली।

इनको यहीं छोड़ रमधनिया और मुनिया दोनों, चन्दू के पीछे लपकीं। चन्दू घर जाकर कुछ देर दादादीन के पास बैठा और फिर अपनी माँ से बातें करने लगा। इसी बीच में रमधनिया कोठे में घुस गई।

रमधनिया की नज़र इस समय चन्दू की रेशमी जाकट पर थी और उसे उसके अतिरिक्त और कुछ दिखलाई ही नहीं दे रहा था।

चन्दू ने आज शराब बहुत पी थी और उसकी आँखों में खुमार छाया जा रहा था। वह कोठे में गया तो रमधनिया अकेली ही अन्दर मिली। चन्दू को देखकर वह अपना चोयल-तागा सँवारने लगी और एक अजीब अदा से आज उसने मुसकराकर चन्दू की ओर देखा।

चन्दू भी मुसकराया और बिछी हुई खाट पर बैठ गया। रमधनिया भी अवसर देखकर उसके पास जा बैठी और प्यार भरे मीठे स्वर में बोली, "अपनी मुनिया की शादी का तो आखिर ख्याल आया ही तुम्हें।" और फिर उसी इठलन के साथ चन्दू का हाथ अपने हाथ में लेते हुए बोली,—"लेट जाओ ज़रा। आज बहुत काम किया है। थक गये मालूम देते हो।"

"हाँ थक गया मुनिया की माँ।" रमधनिया की ओर देखकर कुछ लड़खड़ाती-सी ज़बान से चन्दू बोला। उसे नशा तेज़ होता आ रहा था और वह वास्तव में लेट गया,—सो गया शराब की खुमारी में।

रमधनिया ने एक चादर उढ़ादी चन्दू को। कुछ देर में चन्दू और ज्यादा नशे में होकर सो गया और अब उसे पता नहीं था चलना।

रमधनिया ने मौका ठीक समझकर उसकी जाकट की जेब में पन्द्रह सौ का पन्द्रह सौ रुपया निकाल लिया और चुपके से कोठे से निकलकर उसका बाहर से कुन्दा बन्द करके ताला लगा दिया।

मुनिया बाहर दगड़े में खड़ी इन्तजार कर रही थी रमधनिया का। काफी देर हो गई थी उसे। पत्थर पास धरे हुए की मन पर बैठ गई थी। अंधेरे में रमधनिया मुनिया को पहचानकर उस ओर बढ़ी तो मुनिया भी उसे पहचानकर बोली,—"बहू !"

"हाँ ननदजी !" रमधनिया ने धीरे से कहा।

"काम हो गया !" मुनिया ने पूछा।

"पूरी तरह !" रमधनिया बोली।

और दोनों तेजी के साथ मुनिया के घर की ओर लपककर च[illegible] दीं। सीधी घर पहुँचीं तो रामू खाट पर लेटा हुआ हुक्का पी रहा था दोनों को आती देख आश्चर्य-चकित होकर उसने पूछा,—"क्या बात मुनिया ?"

मुनिया ने होंठों पर उँगली रखकर अपने बाप को चुप रहने क संकेत किया और फिर कोठे में ले जाकर उसे दो शब्दों में सब-कु बतलाते हुए मौसे को जनवासे से यहाँ बुला लाने के लिए भेज दिया।

रामू ने यह काम आनन-फानन में किया। जितनी देर में रा मौसे को बुलाकर लाया उतनी ही देर में मुनिया मुनिया को अपने घ बुला लाई।

रमधनिया ने वहाँ दिये की रोशनी में अपने दामाद का मुँह देखा और देखती ही रही बहुत देर तक। फिर टीका किया उसने और मुनिया ने पास में लाकर मुनिया को खड़ा कर दिया।

"यह सास है तेरी" मुनिया ने कहा।

दूल्हा लज्जा से सकुचाकर झुक गया।

• और फिर रमधनिया ने उसके वही पन्द्रह सौ रुपये उसके हा
देते हुए कहा,—"बेटा ! यह तेरी कमाई का रुपया तुझे टीके,
और आगे आने वाले नेगों में दे रही हूँ। मेरे पास मेरी भुनिया
सब-कुछ। मेरा खजाना है यह। तू इसे लेजा बेटा। नहीं तो यहाँ
बड़े दर्कत बसते हैं। तू अभी रात को ही चला जा।"

लड़के ने सिर झुकाकर सास का आदेश पालन किया।
बहलवान को चुपके से रथ जोतकर गाँव से बाहर मिलने के लिए क
वह स्वयं गाँव से बाहर पहुँच गया। मुनिया और रमधनिया भी भु
को वहीं लेकर जा पहुँचीं।

भुनिया रोने लगी तो मुनिया ने समझाते हुए कहा,—"बेटी !
का समय नहीं है, पर याद रख, तेरी बूआ तुझे किसी तरह की तक
में नहीं देख सकेगी कभी।" और रथ हँक गया, एक क्षण के लिए
खड़ी रह गई मुनिया और रमधनिया।

इस तमाम काम में काफी समय लग गया। पूरी रात्रि निकल
पर कानों-कान भी कोई कुछ न भाँप सका। लेकिन कहाँ तक छि
वाली थी यह बात ?

रात ढली और चन्दू का खुमार टूटा। वह इधर-उधर हिला
रमधनिया वहाँ नहीं थी। पन्द्रह सौ रुपए जेब में लिए हुए वह
समय एक धनवान व्यक्ति था। उसने सोचा कि जेब से निकालकर
एक बार गिनकर देखे; लेकिन ज्यों ही उसका हाथ अपनी जेब मे
जेब खाली थी। उसमें एक भी रुपया नहीं था। वह धक् से रह ग

क्रोध से उसका चेहरा तमतमा उठा और जी चाहा कि
रमधनिया को कच्चा ही चबा जावे। तुरन्त उठकर कोठे के दरवाजे
आया तो वह बाहर से बन्द था।

रात भर दातादीन भी परेशान ही रहा और परेशान चन्दू की
भी थी। रमधनिया, भुनिया और चन्दू का कहीं पता नहीं था।

दातादीन कुछ समझ न सका, परन्तु यह वह अवश्य समझ

था कि कुछ राज है। उसे सामने से रमधनिया आती दिखलाई दी उसकी कुछ जान में जान आई।

कोठे के अन्दर से किवाड़ों की खड़खड़ाहट सुनी और रमधनिया दरवाजा खोलने पर चन्दू वहाँ से निकला तो रंग ही बदल गया घर का चन्दू कड़ककर बोला, "रुपया कहाँ है मेरी जेब का ?"

"रुपया ! जिसका वह रुपया था उसे दे दिया। भुनिया को बेच का तुम्हें कोई हक नहीं"—के साथ रमधनिया ने कहा।

चन्दू पागल की तरह बौखला उठा। उसने कसकर एक लात रमधनिया के मारी। रमधनिया बल खाकर जमीन पर गिर पड़ी।

दातादीन बुढ़ापे में भी बबकारता हुआ उस ओर बढ़ा और चन्दू को उसने रमधनिया की ओर बढ़ने से रोकने का प्रयास किया लेकिन चन्दू इस समय इन्सान नहीं रह गया था। उसने अपने बाप को भी कस कर लात मारी। वह भी लड़खड़ाकर गिरा और सम्भाल न सका इस मजबूत दानव के प्रहार को, उसकी पसलियाँ टूट गईं।

दो-चार हिचकियाँ लीं और दातादीन का प्राण-पखेरू उड़ गए।

लेकिन चन्दू भागा नहीं। पुलिस चन्दू को पकड़कर ले गई। दातादीन की लाश को कन्धा भी न दे सका उसका इकलौता बेटा।

चन्दू की माँ और रमधनिया ने दातादीन की अर्थी को और चन्दू को हथकड़ियों में जकड़कर इस घर से निकलते देखा।

परन्तु रमधनिया को सन्तोष था कि दातादीन अपनी पोती की शादी करके मरा, उसकी इच्छा पूरी हुई।

★

था कि कुछ राज है। उसे सामने से रमधनिया आती दिखलाई दी। उसकी कुछ जान में जान आई।

कोठे के अन्दर से किवाड़ों की खड़खड़ाहट सुनी और रमधनिया के दरवाज़ा खोलने पर चन्दू वहाँ से निकला तो रंग ही बदल गया घर का। चन्दू कड़ककर बोला, "रुपया कहाँ है मेरी जेब का ?"

"रुपया ! जिसका वह रुपया था उसे दे दिया। मुनिया को बेचने का तुम्हें कोई हक़ नहीं"—के साथ रमधनिया ने कहा।

चन्दू पागल की तरह बौखला उठा। उसने कसकर एक लात रमधनिया के मारी। रमधनिया बल खाकर ज़मीन पर गिर पड़ी।

दातादीन बुढ़ापे में भी बबकारता हुआ उस ओर बढ़ा और चन्दू को उसने रमधनिया की ओर बढ़ने से रोकने का प्रयास किया लेकिन चन्दू इस समय इन्सान नहीं रह गया था। उसने अपने बाप को भी कस कर लात मारी। वह भी लड़खड़ाकर गिरा और सम्भाल न सका इस मज़बूत दानव के प्रहार को, उसकी पसलियाँ टूट गईं।

दो-चार हिचकियाँ लीं और दातादीन का प्राण-पखेरू उड़ गए।

लेकिन चन्दू भागा नहीं। पुलिस चन्दू को पकड़कर ले गई। दातादीन की लाश को कन्धा भी न दे सका उसका इकलौता बेटा।

चन्दू की माँ और रमधनिया ने दातादीन की अर्थी को और चन्दू को हथकड़ियों में जकड़कर इस घर से निकलते देखा।

परन्तु रमधनिया को सन्तोष था कि दातादीन अपनी पोती की शादी करके मरा, उसकी इच्छा पूरी हुई।

★